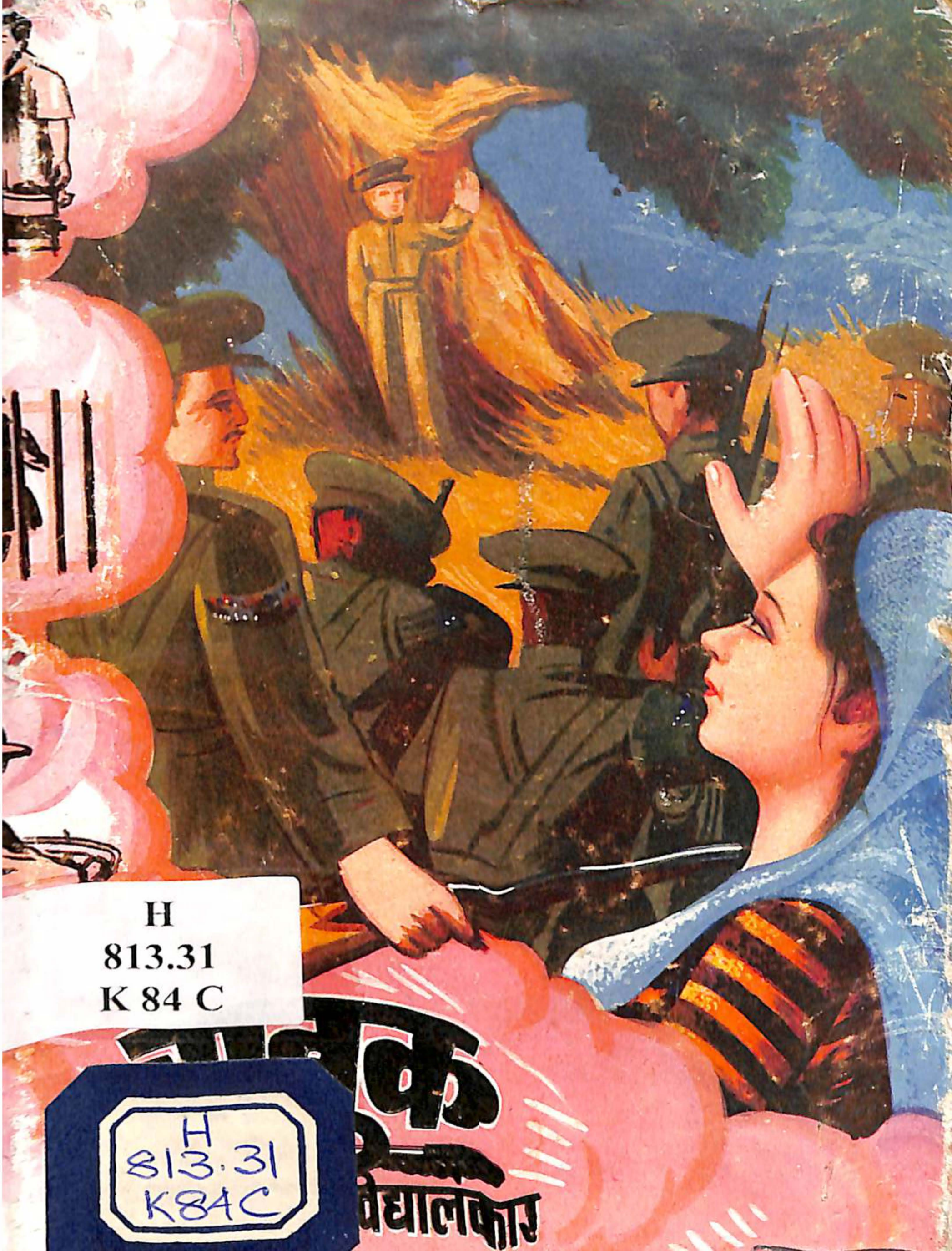

H
813.31
K 84 C

H
813.31
K84C

Chabuk

चाबुक

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद
द्वारा
स्वतंत्रता रजत जयन्ती
के उपलक्ष में
निःशुल्क उपहार

लेखक
Vinayakrao Koratkar
विनायकराव कोरटकर,
विद्यालङ्कार
(वाणिज्य तथा वित्त-मन्त्री हैदराबाद दक्षिण)

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद
Hindi Prachar Sabha
Hyderabad

प्रकाशक :
प्रियबन्धु,
व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
हिन्दी प्रचार सभा
नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद द. .

Library IIAS, Shimla
H 813.31 K 84 C
G2173

H
813.31
K84C

[पुस्तक के सर्वाधिकार हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद द्वारा सुरक्षित हैं]

प्रथम संस्करण १०००—१९५४
मूल्य १-१२-०

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
G-2173
25-5-98

मु
हिन्दी
हिन्दी भवन, हिन्
नामपल्ली स्टेश
हैदराबाद

दो शब्द

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद द्वारा आयोजित साहित्य-गोष्ठियों में जिन्होंने श्रीयुत विनायकराव विद्यालङ्कार को अपनी कहानियाँ पढ़ते हुए सुना है वे जानते हैं कि उनकी कहानियाँ कितनी रोचक, विनोदपूर्ण और चुटकियाँ लेने-वाली होती हैं। श्रीयुत विनायकराव जी का अधिकांश जीवन हैदराबाद के सार्वजनिक क्षेत्र में व्यतीत हुआ है। सर्वजन के सम्पर्क ने उन्हें जहाँ एक ओर नेता और मिनिस्टर बनाया है वहाँ दूसरी ओर मानव-जीवन का अन्वीक्षक और अध्ययनकर्ता भी। उनकी आँखें मानव-स्वभाव का अन्वीक्षण करती हैं, हृदय चुटकियाँ लेता है और ओठों पर हास्य खेलता रहता है। इसी अन्वीक्षण, चुटकियों और हास्य ने मिल कर उन्हें एक कथाकार का रूप प्रदान किया है। उनके हास्य में एक प्रकार की गम्भीरता छुपी हुई है। अच्छा होता यदि अपनी कथाकारिता का वे स्वयं ही कुछ परिचय देते। श्री विनायकराव जी की कथाओं को जीवन की वास्तविक घटनाओं से लिया गया है और इसीलिए उनमें अकृत्रिमता और जीवन है। उनकी भाषा भी सरल और स्वाभाविक है जिसमें स्थान स्थान पर हैदराबाद की बोली के मुहावरे और उनकी मातृभाषा मराठी के शब्द सम्मि-लित हो गए हैं। उनकी कथाओं के चरित्र, दृश्य और परिस्थितियाँ सब प्रायः अपने चारों ओर के वातावरण से लिए गए हैं। मानव-जीवन कितना चटकीला और भड़कीला है परन्तु उसके अन्दर कैसी निर्बलताएँ छुपी हुई हैं! श्री विनायकराव जी ने अपनी कहानियों में मानव-स्वभाव की इन्हीं निर्बलताओं पर मीठी चुटकियाँ ली हैं; उन पर अपने "चाबुक" का प्रयोग किया है।

इनमें से कुछ कथाएँ 'अजन्ता' और 'धर्मयुग' आदि पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। कई महानुभावों ने उन्हें पढ़ कर इच्छा अभिव्यक्त की कि उन्हें संग्रह कर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाए। यह उनकी कथाओं का प्रथम संग्रह है। आशा है कि श्री विनायकराव जी हिन्दी-साहित्य को अपनी कथाओं द्वारा विस्तृत और समृद्ध करेंगे।

वंशीधर विद्यालङ्कार

हिन्दी विभाग,
उस्मानिया यूनिवर्सिटी,
हैदराबाद दक्षिण
१६ दिसम्बर, १६५३

अनुक्रमणिका

१	दुनिया तेरा नाम झूठ है	१
२	पूने का आतिथ्य	९
३	मैं कितना प्रसन्न हूँ	२०
४	जंगल की कली	२७
५	हँसूँ या रोऊँ	३७
६	तहसीलदार	४४
७	परिवर्तन	५७
८	सिफारिश	६४
९	पुनर्मिलन	७१
१०	सरदार जी	८१
११	घर का चोर	८९
१२	धर्मशाला	९७
१३	छुटकारा	१०३
१४	टेलीफोन	१११
१५	परामर्श	११८
१६	रास्ते की झड़प	१२९
१७	सभापति का चुनाव	१३६

दुनिया तेरा नाम झूठ है

इस दक्षिण प्रान्त में अभी अभी बंगाली मिठाई की एक दूकान खुली है। जब इस बात का पता मेरे एक मित्र को चला तो एक दिन तेज़ी से मेरे कमरे में घुसे और कहने लगे—

"कुछ सुना आपने ?"

मैंने चकित हो कर पूछा—"क्या बात है ?"

मैंने सोचा कोई अनहोनी बात हो गई है।

"भई, बात क्या है ? यही कि शहर में बंगाली मिठाई की एक दूकान खुल गई है। सुना है उस दूकान में रसगुल्ले बहुत अच्छे तैयार होते हैं। आज मैंने वहाँ जाने का निश्चय किया है। आपका क्या इरादा है ? चलेंगे उधर ?"

रसगुल्ला देखने में पिंगपांग की गेंद जैसा उज्ज्वल, स्वाद में कुछ पेड़े और कुछ गुलाब जामुन-सा मीठा और स्पर्श में नव-विवाहिता पत्नी के गालों जैसा कोमल होता है। मेरे मित्र रसगुल्ले के दर्शन, स्पर्श और आस्वादन के लिए

लालायित हो उठे। उन्होंने रसगुल्ले की प्रशंसा कई बार सुनी थी। कई वर्षों की प्रतीक्षा के बाद उन्हें आज यह अवसर मिला था। इस अवसर को यों ही जाने देना उन्होंने उचित नहीं समझा। उनका आग्रह देख मैं भी राजी हो गया। मैंने चारों तरफ़ फैले हुए कागजों को समेट कर रखा, फाउण्टेनपेन कोट की जेब में लटकाया और बिजली के पंखे का स्विच बन्द करके बाहर क़दम रखा। हम दोनों बड़ी उत्सुकता से बंगाली-मिठाई की दूकान पर पहुँचे तो देखा ठीक सातवीं मंजिल पर साइन बोर्ड टँगा है—"बंगाली मिठाई-घर।" ज्यों त्यों करके हाँफते हुए, एक एक करके अन्त में हम सातवीं मंजिल पर पहुँच ही गये। मानों आज अमृत पान करने के लिए स्वर्गलोक में पहुँचे हों। हमारे कुर्सी पर बैठते ही एक बेटर सामने आ खड़ा हुआ। मेरे मित्र के मुँह से 'रसगुल्ला' शब्द निकला ही था कि दो तश्तरियाँ हमारे सामने आ गईं। मैंने एक तश्तरी ली और एक मेरे मित्र ने। खाते-खाते जब मैंने मित्र की तरफ़ देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पहले तो उनका चेहरा कुछ टेढ़ा-मेढ़ा हुआ फिर उस पर उदासी छा गई और उसके बाद क्रोध के मारे लाल हो गया। उनके चेहरे पर गिरगिट के बदलते हुए रंगों की तरह विविध भावों को देख कर मैं हक्का-बक्का रह गया —कहीं वे मूर्च्छित हो कर गिर न जाएँ। साफ़ मालूमं हो रहा था कि मेरे मित्र को रसगुल्ले नहीं भाये हैं। उनके खाने से जैसे उन्हें ग्लानि हो रही है। उन्होंने एकाएक कड़क कर आवाज दी 'व्यवस्थापक।'

'जी हाँ, हाजिर हुआ' कहते हुए व्यवस्थापक रसगुल्ले की एक और प्लेट ले कर तेजी से आ पहुँचा। समीप आ कर उसने आँखों में जिज्ञासा को समेटते हुए पूछा—'और चाहिए बाबूजी ?'

'यह माल कितने दिन का बासी है ?' मित्र ने क्रोध भरे स्वर में पूछा।

'बासी ? बासी नहीं हैं बाबूजी ! ये तो आज प्रातःकाल के बने हुए हैं। रसगुल्ला तो एक दिन से ज्यादा रह ही नहीं सकता, खट्टा हो जाता है। हम आज का माल कल नहीं रखते। माँग ही इतनी है कि माल बचता नहीं और अगर बचे तो हम फेंक देते हैं।"

'नानसेन्स' मेरे मित्र ने फटकार सुनाई और वेटर की तरफ़ इशारा करके कहा—'चलो, उठाओ इसको।'

वेटर ने चुपचाप तश्तरी उठा ली। उसमें अभी एक रसगुल्ला वाकी वचा था। मैं रसगुल्ले खाने में लगा हुआ था इस लिए मेरे मित्र को कुछ देर रुकना पड़ा। उन्होंने अपनी जेब से सिगरेट निकाली—क्योंकि सिगरेट में एक अच्छा गुण यह है कि वह क्रोध और विवाद पर जल्दी क़ाबू पा लेती है, एक आवरण डाल देती है। मेरे मित्र ने लम्बी कश ले कर जब धुआँ छोड़ना शुरू किया तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे धुएँ के रूप में उनका क्रोध उड़ रहा है। सिगरेट की प्रत्येक कश के साथ उनका चेहरा सौम्य बनता जा रहा था।

मेरे मित्र सिगरेट की धुन में थे कि मेरे कान व्यवस्थापक की टेवल पर होनेवाली वातचीत में मग्न हो गये।

हमारी बगल में दूसरी मेज पर एक जोड़ा रसगुल्ले खाने में व्यस्त था। मैंने अनुभव किया उस दम्पती को रसगुल्ले बहुत पसन्द आ रहे हैं। वापिस लौटते समय जब वह जोड़ा व्यवस्थापक की मेज़ के पास पहुँचा तो पति महाशय ने कहा - 'रसगुल्ले वहुत पसन्द आये। हम चाहते हैं कुछ अपने साथ वच्चों के लिए गाँव ले जाएँ।'

व्यवस्थापक की वाछें खिल गईं। उसने पूछा—'कितने दूँ बावूजी?'

'मगर मुश्किल यह है, हमारा गाँव यहाँ से वहुत दूर है' पति ने कहा। 'जाने में तीन दिन लग जाएँगे। एक दिन तो रेल में बीतेगा। दूसरे दिन मोटर से चित्तूर तक जाएँगे। वहाँ से वारह मील पैदल चलना पड़ेगा।' अपनी भावी यात्रा का लम्वा खाका खींचने के वाद आतुर स्वर में पूछा—'क्या आपके रसगुल्ले तीन दिन तक ठीक रह सकेंगे?' इनमें खटास तो पैदा नहीं होगी।'

'तीन दिन? अजी क्या कहते हैं वावूजी? रसगुल्ले कलकत्ता से अमरीका जाते हैं! इनके वनाने में सौंजू का मसाला डाला जाता है, जिससे एक महीने तक इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। आप ले जा कर देखिये। एक महीने के वाद भी ऐसे लगेंगे जैसे कल के बने हैं।' इतना कह कर व्यवस्थापक

एक एक करके रसगुल्ले हंडिया में भरने लगा। बीच में एक बार पूछा 'दो सेर रख दूँ, अम्मा जी'—कुछ देर बाद यह जानने के लिए कि पति देवता कहाँ तक खर्च करने को तैयार होते हैं उसने पूछा—'आठ रुपये के दे दूँ ? कुछ अधिक तो न होंगे ?'

मैंने सोचा यदि मेरे मित्र और व्यवस्थापक का संवाद इस दम्पती ने सुना होता तो रसगुल्ले कभी न खरीदते या फिर दम्पती और व्यवस्थापक की बात-चीत मेरे मित्र सुन लेते तो उन्हें कितना क्रोध आता इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

× × × ×

किसी भी वस्तु की खरीद-बेंच में मेरे मित्र का स्वभाव बहुत संदेहशील है। बिना आनाकानी किये या आक्षेप किये कभी कोई चीज नहीं खरीदते। एक दिन की घटना है—हम दोनों एक साथ रेल में यात्रा कर रहे थे। सन्ध्या-का समय था। हमारी गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी। एक लड़का—'चाय गरमा-गरम' की आवाज़ लगाता हुआ प्लेट फार्म पर घूम रहा था। मेरे मित्र ने उसको ठहरा कर एक प्याली चाय की माँगी। लड़के ने जब चाय की प्याली भरना शुरू किया तो मेरे मित्र ने पूछा—क्यों भई, चाय शक्कर की बनी है या गुड़ की ?' लड़ाई का जमाना था वह। बाजार में शक्कर मिलती नहीं थी। होटलों में चाय प्रायः गुड़ की बनती थी। मेरे मित्र का प्रश्न स्वाभाविक था।

'जी हुजूर शक्कर की है ! हम गुड़ की चाय नहीं बेचते। इसीलिए तो डेढ़ आना लेते हैं।'

यह कहते हुए उस लड़के ने पौन कप चाय मेरे मित्र के सामने रख दी।

'ऐं ! डेढ़ आने में इतनी कम चाय !" मित्र झुँझलाये। किन्तु उन्हें यह पूरी तरह मालूम था कि उस समय सिंगल कप चाय का अर्थ पौन कप ही होता था। वे पहली बार स्टेशन पर चाय पी रहे थे ऐसी बात नहीं थी। संभवतः इसीलिए आक्षेप करते हुए भी मेरे मित्र ने हाथ बढ़ा कर चाय की प्याली ले ही ली और घूँट भरने लगे।

लड़का भी तेज था। वह भी हार क्यों मानता ? आक्षेप का उत्तर देते

हुए उसने डंक मार ही तो दिया—'बाबूजी, शक्कर की चाय मँहगी ही मिलेगी। गुड़ की चाय थोड़े ही है जो कप भर कर दी जाए।'

लड़का चाय दे कर बगल के डिब्बे में दूसरे ग्राहक को चाय देने जा ही रहा था कि मित्र चिल्लाये—

'अरे गधे के बच्चे, शक्कर का नाम ले कर गुड़ की चाय पिला दी। कल मेरी छाती से जरूर खून गिरेगा।'

मित्र ने इतना कह कर कप में बची हुई चाय की दस पाँच बूँदों को इस लहजे से फेंका जैसे उन्होंने चाय पी ही नहीं और सब लुढ़का दी है। लड़के ने तो उनके हाथ के झटके को ही देखा था। वह घबराया। उसने सोचा सारी चाय उँडेल दी गई है, अब पैसे नहीं मिलेंगे। लड़का लगा क़समें खाने—शक्कर की चाय है बाबूजी। सभी लोग पी रहे हैं। किसी ने शिकायत नहीं की...... यह कहते हुए उसने मुझे आशा भरे नेत्रों से देखा और बोला—'बाबूजी, आप भी पी कर देखिये। यदि शक्कर की न हो तो दोनों प्यालियों के पैसे नहीं लूँगा।'

लड़के को विश्वास था कि चाय निखालिस शक्कर की थी।

मैंने मित्र की फेंकी हुई चाय की उन बूँदों को देखा, ऐसा लगा जैसे वह गुड़ की नहीं थी और लड़का जिस तरह सौगन्ध खा रहा था उससे यह भी सन्देह होता था कि चाय में शक्कर भी नहीं है। जब कि शक्कर चोरबाज़ार के सिवाय कहीं मिलती नहीं थी और वह भी रुपए को आधा सेर, तो कौन शक्कर की चाय बनाने चला। इसीलिए मैंने भी कौतूहलवश एक कप चाय ले ली।

मुझे मधुमेह की बीमारी है। इसीलिए मैं शक्कर की जगह सेक्रीन का उपयोग करता हूँ। चाय का एक घूँट पीते ही मैं ताड़ गया कि चाय में न तो शक्कर है न गुड़। चाय में सेकरीन मिली थी। एक ओर मेरे मित्र थे जो यह जान कर कि चाय में शक्कर नहीं है, यह सिद्ध कर रहे थे कि उसमें गुड़ है और दूसरी तरफ़ वह लड़का था जो यह जानते हुए कि चाय में गुड़ नहीं है शक्कर सिद्ध करने पर तुला हुआ था। दोनों झूठ बोल रहे थे, केवल इसलिए कि दोनों समझ रहे थे कि सामनेवाला सत्य नहीं बोल रहा है। मैंने सोचा कोई

चित्रकार हृदय की इस वृत्ति को चित्रित कर सके तो वह चित्र कितना विचित्र होगा।

× × × ×

एक दिन मैं अपने मित्र के साथ कार्यालय में बैठा था। एक व्यक्ति बहुत घबराया हुआ-सा प्रविष्ट हुआ। वह व्यक्ति कभी बाहर नज़र दौड़ाता तो कभी बगल के कमरे की ओर ताकता, जहाँ मेरी ख़ास बैठक थी। एक क्षण के बाद उसने प्रश्न किया—'बाबूजी, आज्ञा हो तो कुछ देर के लिए भीतर सुस्ता लूँ।'

मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। जान न पहचान और सवाल ऐसा कि बरसों की पहचान हो।

"यह तो बताइए आप हैं कौन ? यहाँ क्यों आये हैं ? आप इतना घबराये हुए क्यों हैं ? बैठिये। पानी तो नहीं पिएँगे आप।"

मैंने एक साँस में ही कई प्रश्न पूछे।

मेरे सान्त्वना भरे शब्दों को सुन कर उस नवागन्तुक व्यक्ति में आशा का सञ्चार-सा हुआ : वह मेरे निकट आया और रुमाल से पसीना पोंछते हुए बोला—'क्या बताऊँ बाबूजी ? मैं स्टेशन पर पार्सल-क्लर्क हूँ। पार्सल आफ़िस में नथमल-मँगनीराम के नाम से आया हुआ केसर का पार्सल फट गया। कुछ केसर मैंने भी ले ली और पुड़िया बाँध कर जेब में रख ली। किन्तु कहते हैं न—सिर मुंडाते ही ओले पड़े, मेरा भी वही हाल हुआ। जीवन में पहली बार चोरी की थी, किन्तु ऐसा लगता है, दरवाजे पर खड़ा सिपाही सब देख रहा था। जब मैं घर के लिए चला तो वह मेरा पीछा करने लगा। घर पहुँचते ही वह मेरी तलाशी लेगा। मुझे गिरफ्तार करेगा। मुझे सजा होगी। मेरी नौकरी छूट जाएगी। और फिर .... फिर...... ।"

यह कहते कहते उसका कण्ठ भर आया। और कुछ बोल नहीं सका। मानों वह गिरफ्तारी के बाद होनेवाली अपने बच्चों की दुर्दशा से काँप उठा हो। मैंने बाहर जा कर देखा। बाहर पुलिस का कोई सिपाही नहीं था। अन्दर आ कर मैंने कहा—

"आपको भ्रम हो रहा है जनाब। जाइए तुम्हारा कोई पीछा नहीं कर रहा है।"

नहीं बाबूजी, पुलिसवाला आपके बँगले के नुक्कड़ पर खड़ा है। बाहर निकलते ही या तो मेरा पीछा करेगा या गिरफ्तार कर लेगा।"

वह क्षण भर रुका और फिर उसने जेब से पुड़िया निकाल कर मेज पर रख दी। वह बोला—"यदि आप इस पुड़िया को अपने पास रख लेंगे तो मुझ पर बड़ा उपकार होगा। कल किसी समय ले जाऊँगा। मेरी इतनी सहायता कीजिये श्रीमानजी।"

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मेरे मित्र आज असाधारण रूप से चुप क्यो हैं। मुझे ज्यादा सोचना नहीं पड़ा क्योंकि मित्र ने उसी समय कुर्सी पर कुछ तन कर कहा—मित्र, अपनी केसर बेच डालो जिससे मामला साफ़ हो जाए कहाँ भटकोगे? चलो सौदा तय हुआ। रुपये तोला के हिसाब से पूरी केसर तोल दो।

'नहीं बाबूजी, ऐसा जुलुम मत कीजिये। मीठे के लालच से ही जूठा खाया जाता है। चोरी का माल है, क्या हुआ? कुछ तो मिलना चाहिए। बाजार में दस रुपये तोले का भाव है। कम से कम आधा दाम तो मिलना चाहिए।"

नवागन्तुक ने बात समाप्त की।

'चोरी का माल और चोर बाजार से भी ज्यादा कीमत! उठा तेरी केसर और रास्ता नाप।" मित्र ने केसर की पुड़िया उसकी तरफ सरका दी।

यह सुन कर भी नवागन्तुक गया नहीं; यह देख कर मित्र फिर बोले—जाता है या सिपाही को बुलाऊँ?'

'क्षमा कीजिये बाबूजी!' नवागन्तुक ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—'उस माटीमिले सिपाही का मुँह भी तो बन्द करना पड़ेगा। चलिए दो रुपये तोले से ले लीजिए। प्रति तोला एक रुपया मुझे मिल जाएगा और एक रुपया उस सिपाही को और आपको भी तोला पीछे आठ रुपये का फ़ायदा है।"

मामला तय हुआ। पुड़िया में दस तोला केसर निकली। बीस रुपये

ले कर प्रणाम करता हुआ वह नवागन्तुक चला गया।

अपने मित्र के आग्रह पर मैंने कुछ परिचित लोगों को निमन्त्रित किया। निमन्त्रित लोगों को केसरिया दूध पिलाने का कार्यक्रम बनाया गया। मैंने अपने नौकर बुद्धू को तोला भर केसर दे कर दूध औटाने का आदेश दिया किन्तु कुछ देर बाद बुद्धू ने आ कर शिकायत की 'दूध में केसर का रंग ही नहीं उतर रहा है; थोड़ी केसर और दीजिए।' देखते-देखते दस प्याली दूध में दस तोले केसर झोंक दी गई, फिर भी किसी तरह के रंग के लक्षण नहीं दिखाई दिये। किसी तरह की गन्ध भी नहीं आ रही थी। मैंने अपने मित्र को भीतर बुला कर हाल सुनाया तो उन्होंने केसर का बारीकी से निरीक्षण और परीक्षण किया और बोले 'अरे ये तो रंग में रंगे हुए मकई के भुट्टे के बाल हैं। जब केसर नहीं है तो रंग और गन्ध कहाँ से आएँगे? सूअर के बच्चे ने हम लोगों को पूरा उल्लू बना डाला।"

× × × ×

इन तीनों घटनाओं ने मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव किया है। जब जब विचार करता हूँ, हृदय से एक ही उत्तर मिलता है "दुनिया तेरा नाम झूठ है!"

पूने का आतिथ्य

पूना ऐतिहासिक नगर है। इस नगर ने अनेक शासकों का उतार-चढ़ाव देखा है। सुन्दर प्रासादों, विस्तीर्ण सभा-भवनों, रम्य बगीचों, सुदृढ़ किलों और कहीं कहीं भव्य समाधियों में उन राजाओं की स्मृति आज भी सुरक्षित है। इस समय यद्यपि नगर जिले का केन्द्र मात्र रह गया है, फिर भी इसका आकर्षण कम नहीं है। कुछ दिन पहले तक इस नगर में एक बड़े साम्राज्य की राजधानी रही है। ब्रिटिश शासन-काल में भी यह नगर अपने स्वास्थ्यप्रद जल-वायु के कारण धनिकों और उच्च पदाधिकारियों को आकर्षित करता रहा है। बहुत-से लोग अपने जीवन का शेष भाग या अवकाश का समय यहाँ बिताने आते रहे हैं। नगर के एक तरफ़ पर्वत माला दूर तक चली गई है। इस पर्वत माला पर बनाई गई नाकेबन्दी आज भी दर्शकों के हृदय पर उन वीरों की गाथाओं को अंकित कर देती है जिन्होंने धर्म और जाति की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति दी थी। दूसरी तरफ़ दूर तक फैले हुए मैदान हैं, जिनमें गन्ने की खेती होती है और इसीलिए जो बारहों महीने हरे भरे दिखाई देते हैं।

पूना के निवासी बहुत परिश्रमी और कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। अंग्रेजी शासन के समय इन लोगों ने खून पसीना एक करके बड़े विद्यालयों, वाचनालयों और कालेजों की स्थापना की। देश के कोने-कोने से अनेक यात्री इस नगर की ऐतिहासिक ख्याति, प्राकृतिक सौन्दर्य, राजनीतिक चेतना और सामाजिक जागरण से प्रेरित हो कर प्रतिवर्ष यहाँ आया करते हैं। जान पड़ता है, इसीलिए यहाँ के निवासी अतिथियों से बहुत तंग आ चुके हैं। यहाँ के लोगों में आतिथ्य-सत्कार के प्रति वैसा आकर्षण दिखाई नहीं देता, जैसा कि भारत के सभी नगरों या ग्रामों में विद्यमान है।

पूने में बाबू मंगलदास के अनेक परिचित व्यक्ति रहते हैं। पूना के अनेक सभ्य नागरिक बम्बई जाते रहते हैं। कोई किसी विद्यालय या कालेज के लिए दान माँगने जाता है तो कोई राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक सम्मेलनों में सम्मिलित होने के लिए। जब लोग बम्बई जाते हैं तो वे बम्बई में किसी न किसी बहाने बाबू मंगलदास से परिचय प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। बाबू मंगलदास भी यथाशक्ति सभी को सहायता करते थे। सहायता प्राप्त करने वालों में सभी प्रकार के लोग थे। बहुतों के साथ पत्र-व्यवहार भी होता था।

एक दिन सायंकाल बाबू मंगलदास अपने मित्रों के साथ बैठक में ताश खेल रहे थे। खेलते-खेलते निश्चय हुआ कि इस बार गर्मियों में सात-आठ दिन पूना में बिताये जाएँ—

विनोद ने कहा—'इन दिनों पूना का मौसम बहुत सुहावना रहता है। इन्हीं दिनों तो पूना जाते हैं।'

अनुमोदन किया प्रमोद ने—'इन्हीं दिनों वहाँ अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी भी हो रही है।'

'अजी, इन्हीं दिनों वहाँ अखिल भारतीय टाँगा-सम्मेलन, निखिल भारतीय नदी प्रदर्शन, आल इण्डिया नापित-समाज का अधिवेशन भी होनेवाला है। यदि इस समय पूना चला जाय तो बड़ा आनन्द रहेगा।' मनोहर ने प्रस्ताव का समर्थन कर डाला।

जब प्रस्ताव का विधिवत अनुमोदन-समर्थन हो चुका तो मधुकर ने शंका उपस्थित की—'इन दिनों पूना में बड़ी गड़बड़ रहती है ! इन सम्मेलनों के अतिरिक्त भारत-प्रसिद्ध दो नाटक-कम्पनियाँ भी वहाँ आई हुई हैं। एक अमेरिकन सर्कस भी अपना कर्तब दिखा रहा है। इन सब चीजों को देखने के लिए दूर-दूर से दर्शक आ रहे हैं। इस हालत में किसी होटल में ठहरने का प्रबन्ध किये बिना जाना ठीक न होगा।'

'होटल में स्थान न मिला तो क्या पूना कोई रेगिस्तान है, जहाँ सिर ढकने के लिए कोई छत नहीं मिलेगी—' विनोद ने व्यंग करते हुए कहा—होटल न सही, धर्मशाला तो मिलेगी।'

'यदि धर्मशाला में भी जगह नहीं मिली तो मोटर में सामान रखे रखे किसी झाड़ के नीचे डेरा लगा देंगे। दिन भर सैर में बीतेगा, रात खुले में बिछौना डाल कर चाँदनी का मजा लेंगे।' मनोहर ने मित्र-मण्डली का उत्साह बढ़ाया।

'अरे भाई, इतने निराश क्यों होते हो—' बाबू मंगलदास ने विश्वास के स्वर में कहा—'पूने में हमारे मित्रों की कमी नहीं। राव बहादुर भिड़े, प्रिन्सिपल मंडने, प्रोफेसर पुरोहित, मधुवाणी के सम्पादक पुरंदरे, पोपट ग्रन्थालय के अध्यक्ष गोरे आदि अनेक मित्र वहाँ रहते हैं। कोई न कोई वहाँ मिलेगा ही और उनसे एकाध कमरा रहने के लिए मिल ही जाएगा।'

× × × ×

दूसरे दिन प्रातः साढ़े सात की गाड़ी से मंगलदास और उनके साथी पूना-स्टेशन पर उतरे। इन लोगों ने देखा स्टेशन पर होटल-एजेण्टों का बिलकुल अभाव है। इन लोगों ने अनुमान लगाया सम्भवतः होटलों में जगह न मिले। मधुकर ने दो हमालों को सामान उठाने का इशारा करते हुए पूछा—'पास के किसी होटल में उतरने के लिए जगह मिलेगी?'

'नहीं बाबू जी! बाहर पास ही दो होटल हैं। मद्रास मेल से दो यात्री उतरे थे। उन्हें जब हम वहाँ ले गये तो मैनेजर ने साफ़ इन्कार कर दिया, हालाँकि वे दोनों बरामदे में पड़े रहने को तैयार थे।' एक हमाल ने उत्तर दिया।

'हम टैक्सी में सामान रखे देते हैं। आप टैक्सी वाले से पूछ देखें। उन्हें उस बात का ज्यादा पता रहता है।" दूसरे हमाल ने बात आगे बढ़ाई।

सारा सामान टैक्सी के पीछे जमाते हुए एक हमाल ने कहा—'भैया, इन लोगों को किसी अच्छे होटल में उतारना।'

'बड़ी विचित्र बात है, आप लोगों ने किसी होटल में स्थान सुरक्षित नहीं कराया।' ड्राइवर ने इस तरह आश्चर्य व्यक्त किया जैसे जीवन में इससे बड़ी कोई गल्ती नहीं हो सकती।

ड्राइवर ने अपनी बात जारी रखी—'इन दिनों यहाँ वैसे ही भीड़ ज्यादा रहती है साहब, फिर आज घुड़दौड़ है। अभी अभी दो यात्रियों को मणिहारों की धर्मशाला में उतार कर आया हूँ। अगर आप लोग भी चलना चाहें तो पहुँचा दूँगा।'

मंगलदास और उनके साथी सोच रहे थे—कहाँ चला जाए। बात शुरू की मधुकर ने —'मैं तो समझता हूँ साढ़े नौ की गाड़ी से बम्बई लौट चलना ही ठीक रहेगा।' और उसने मंगलदास की तरफ मुँह करके ताना कसा—बाबूजी आपने तो मित्रों को तार दिया था। उनमें से कोई लेने नहीं आया? उन लोगों के घरों पर जाना बेकार है।'

'नहीं, नहीं सन्देह करने की जरूरत नहीं मधुकर! इतनी जल्दी वे लोग घर से नहीं निकल सकते होंगे। निश्चय ही वे लोग घर में राह देख रहे होंगे। पाँच जगह तार दिया है। कोई न कोई तो मिलेगा।'

बाबू मंगलदास ने मधुकर को उत्तर देने के बाद ड्राइवर से प्रश्न किया—'तुम्हें राव बहादुर भिड़े का मकान मालूम है?'

'मुहल्ला बताएँ तो खोज निकालूँगा, साहेब।'

'शनिवार पेठ चले चलो।'

'तो चलिए, बैठिये।' ड्राइवर ने तत्परता बताई। सब लोग मोटर में बैठ गये। राव बहादुर भिड़े का मकान कुछ खोज करने पर मिल गया। मकान के सामने ड्राइवर पाँच मिनट तक हार्न बजाता रहा, किन्तु न तो कोई घर से बाहर निकला और न दुमंजिले से कोई जवाब आया। तब मधुकर ने दो-तीन बार जोर-

जोर से आवाज लगाई। कोई उत्तर न मिला तो मनोहर ने किवाड़ों को जोर से खड़काना शुरू किया। दरवाजे टूट न जाएँ, संभवतः यही समझ कर एक व्यक्ति दरवाजा खोल कर बाहर निकला। उसने प्रश्न किया—'आप लोग कौन हैं? कहाँ आए हैं? क्या चाहते हैं?'

'हम लोग बम्बई से आये हैं और रावबहादुर भिड़े से मिलना चाहते हैं। मधुकर ने उत्तर दिया।

'वे तो कल सयंकाल ही बम्बई गये हैं।'

'हमने तो उन्हें अपने आने का तार भेजा था। क्या बम्बई जाते समय वे आपको कुछ कह कर नहीं गये? विनोद ने काम की बात की।

'नहीं साहेब! हमसे तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।' घर से बाहर आनेवाले सज्जन ने कहा।

बाबू मंगलदास की ओर इशारा करते हुए विनोद ने कहा—'आप रावबहादुर साहब के धनिष्ठ मित्र हैं। इस मकान में दो-तीन दिन ठहरना चाहते हैं। यदि राव साहब यहाँ होते तो कोई कठिनाई नहीं होती किन्तु आप विश्वास रखिये, यदि हम लोगों को आप ठहरा लेंगे तो रावसाहब को क्रोध नहीं होगा, वे प्रसन्न ही होंगे।'

'किन्तु उनकी अनुपस्थिति में······'

चपरासी असमर्थता जता भी नहीं पाया था कि मंगलदास की दृष्टि म्हाड़ी* पर गई। उन्हें रावबहादुर दिखाई दिये इसी लिए वे चिल्लाये—

'झूठ, बिल्कुल झूठ बोलता है। रावबहादुर तो ऊपर बैठे हैं।'

'आपको भ्रम हो रहा है साहेब!' नौकर ने कहा—वे रावबहादुर नहीं उनके भाई होंगे।'

'अरे बाबा जाओ, उनके भाई से ही पूछ आओ' मधुकर ने कहा – 'उनसे कहना बम्बई से रावबहादुर के मित्र आये हैं। एक दिन आपके यहाँ रहना चाहते हैं।'

नौकर ने तत्काल उत्तर दिया—'उनसे क्या पूछूँगा साहेब! वे तो

*म्हाड़ी–ऊपरी मंजिल

'हम टैक्सी में सामान रखे देते हैं। आप टैक्सी वाले से पूछ देखें। उन्हें उस बात का ज्यादा पता रहता है।" दूसरे हमाल ने बात आगे बढ़ाई।

सारा सामान टैक्सी के पीछे जमाते हुए एक हमाल ने कहा—'भैया, इन लोगों को किसी अच्छे होटल में उतारना।'

'बड़ी विचित्र बात है, आप लोगों ने किसी होटल में स्थान सुरक्षित नहीं कराया।' ड्राइवर ने इस तरह आश्चर्य व्यक्त किया जैसे जीवन में इससे बड़ी कोई गल्ती नहीं हो सकती।

ड्राइवर ने अपनी बात जारी रखी—'इन दिनों यहाँ वैसे ही भीड़ ज्यादा रहती है साहब, फिर आज घुड़दौड़ है। अभी अभी दो यात्रियों को मणिहारों की धर्मशाला में उतार कर आया हूँ। अगर आप लोग भी चलना चाहें तो पहुँचा दूँगा।'

मंगलदास और उनके साथी सोच रहे थे—कहाँ चला जाए। बात शुरु की मधुकर ने—'मैं तो समझता हूँ साढ़े नौ की गाड़ी से बम्बई लौट चलना ही ठीक रहेगा।' और उसने मंगलदास की तरफ मुँह करके ताना कसा—बाबूजी आपने तो मित्रों को तार दिया था। उनमें से कोई लेने नहीं आया? उन लोगों के घरों पर जाना बेकार है।'

'नहीं, नहीं सन्देह करने की जरुरत नहीं मधुकर! इतनी जल्दी वे लोग घर से नहीं निकल सकते होंगे। निश्चय ही वे लोग घर में राह देख रहे होंगे। पाँच जगह तार दिया है। कोई न कोई तो मिलेगा।'

बाबू मंगलदास ने मधुकर को उत्तर देने के बाद ड्राइवर से प्रश्न किया—'तुम्हें राव बहादुर भिड़े का मकान मालूम है?'

'मुहल्ला बताएँ तो खोज निकालूँगा, साहेब।'

'शनिवार पेठ चले चलो।'

'तो चलिए, बैठिये।' ड्राइवर ने तत्परता बताई। सब लोग मोटर में बैठ गये। राव बहादुर भिड़े का मकान कुछ खोज करने पर मिल गया। मकान के सामने ड्राइवर पाँच मिनट तक हार्न बजाता रहा, किन्तु न तो कोई घर से बाहर निकला और न दुमंजिले से कोई जवाब आया। तब मधुकर ने दो-तीन बार जोर-

जोर से आवाज लगाई। कोई उत्तर न मिला तो मनोहर ने किवाड़ों को जोर से खड़काना शुरू किया। दरवाजे टूट न जाएँ, संभवतः यही समझ कर एक व्यक्ति दरवाजा खोल कर बाहर निकला। उसने प्रश्न किया—'आप लोग कौन हैं? कहाँ आए हैं? क्या चाहते हैं?'

'हम लोग बम्बई से आये हैं और रावबहादुर भिड़े से मिलना चाहते हैं। मधुकर ने उत्तर दिया।

'वे तो कल सयंकाल ही बम्बई गये हैं।'

'हमने तो उन्हें अपने आने का तार भेजा था। क्या बम्बई जाते समय वे आपको कुछ कह कर नहीं गये? विनोद ने काम की बात की।

'नहीं साहेब! हमसे तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।' घर से बाहर आनेवाले सज्जन ने कहा।

बाबू मंगलदास की ओर इशारा करते हुए विनोद ने कहा—'आप रावबहादुर साहब के घनिष्ठ मित्र हैं। इस मकान में दो-तीन दिन ठहरना चाहते हैं। यदि राव साहब यहाँ होते तो कोई कठिनाई नहीं होती किन्तु आप विश्वास रखिये, यदि हम लोगों को आप ठहरा लेंगे तो रावसाहब को क्रोध नहीं होगा, वे प्रसन्न ही होंगे।'

'किन्तु उनकी अनुपस्थिति में······'

चपरासी असमर्थता जता भी नहीं पाया था कि मंगलदास की दृष्टि म्हाड़ी* पर गई। उन्हें रावबहादुर दिखाई दिये इसी लिए वे चिल्लाये—

'झूठ, बिल्कुल झूठ बोलता है। रावबहादुर तो ऊपर बैठे हैं।'

'आपको भ्रम हो रहा है साहेब!' नौकर ने कहा—वे रावबहादुर नहीं उनके भाई होंगे।'

'अरे बाबा जाओ, उनके भाई से ही पूछ आओ' मधुकर ने कहा – 'उनसे कहना बम्बई से रावबहादुर के मित्र आये हैं। एक दिन आपके यहाँ रहना चाहते हैं।'

नौकर ने तत्काल उत्तर दिया—'उनसे क्या पूछूँगा साहेब! वे तो

*म्हाड़ी–ऊपरी मंजिल

बिलकुल पागल हैं।'

'बाबू जी यहाँ तो दाल में काला नज़र आता है। रावबहादुर अपने भाई बन गये और उन्हीं को पागल बनाया जा रहा है। चलिये प्रिन्सिपल के घर चलें। देर होने पर कहीं कालेज न चले जाएँ।' मधुकर ने सुझाव रखा।

मोटर आगे बढ़ी। प्रिन्सिपल के घर का पता ढूँढते-ढूँढते दस बज गये। गली में मोटर नहीं जा सकती थी। मंगलदास और मधुकर गली में घर ढूँढने चले। दोनों थोड़ी दूर ही गये थे कि प्रिन्सिपल साहब साइकिल पर आते दिखाई दिये। मंगलदास ने प्रिन्सिपल को नमस्कार किया!

'नमस्कार, नमस्कार का उत्तर देते हुए प्रिन्सिपल साइकिल से उतर पड़े। बोले—वाह, बाबू जी! आपने कमाल कर दिया। साढ़े सात बजे आते-आते यह समय कर दिया! चाय बेकार चली गई। जब देर होने लगी तो मैं समझ गया आप रावबहादुर के घर में उतरे होंगे। रावबहादुर का आग्रह प्रसिद्ध है। वे स्टेशन से ही आपको अपने घर ले गये होंगे। बड़ा आदमी बड़े के घर ही ठहरता है, मुझसे मिलने चले आये आप, यह क्या कम दया है!'

प्रिन्सिपल ने अपनी घड़ी की ओर देखते हुए कहा—'मुझे देर हो रही है। मैं सन्ध्या को रावबहादुर के यहाँ मिलूँगा। कल का भोजन मेरे घर रहा।'

प्रिन्सिपल उछल कर साइकिल पर बैठ गये। मंगलदास कुछ कहें, इतने में साइकिल पचास कदम चली गई थी। मंगलदास स्तब्ध रह गये।

'बेटा, बदमाश ही नहीं ऊपर से काफी ढीठ भी है—' मधुकर ने मंगलदास को सान्त्वना देते हुए कहा—'कोई बात नहीं। इसे इतना दण्ड पर्याप्त है। इसे आज सुबह आठ बजे से हम लोगों की राह देखनी पड़ी होगी। सोच रहा होगा कब मेहमान दिखाई दें और कब साइकिल ले कर दौड़ूँ। चलिये बाबू जी, प्रिन्सिपल को परख लिया अब प्रोफेसर को भी देख डालें।'

× × × ×

एक बार फिर मोटर चालू हुई। थोड़ी देर में पूरी मित्र-मण्डली कालेज के मैदान में थी। प्रोफेसर पुरोहित का मकान मिलने में देर नहीं लगी। प्रोफेसर साहब वहीं एक पाँच कमरे वाले मकान में रहते थे। आस-पास बगीचा लगा

हुआ था। मोटर का हार्न बजाते ही एक लड़का बाहर निकला जो संभवतः प्रोफेसर का लड़का था। लड़के ने देहली पर से ही पूछा—

'आप में से कोई मंगलदास साहब हैं, जो बम्बई से आनेवाले हैं?'

'हाँ भई, मेरा ही नाम मंगलदास है।' बाबू जी ने आशा से भर कर उत्तर दिया।

'अच्छा चले आइए। पिता जी आप ही लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे।'

'तो क्या अब चले गये हैं?' घबरा कर मधुकर ने पूछा।

'नहीं, चले नहीं गये; तीन दिन से बहुत बीमार हैं, डाक्टर ने किसी से बात-चीत करने के लिए मना कर रखा है। कमरे में सो रहे हैं। इधर के तीन कमरे किराये पर उठा दिये गये हैं। पिताजी ने कहा है, यदि आप लोग आएँ तो रसोई घर में ठहरा दूँ।'

'फिर भोजन कहाँ बनेगा?' मधुकर ने पूछा।

'माता जी किसी कोने में कर लेंगी।' लड़के ने कहा।

मधुकर बोला—'शायद आप लोग समझते होंगे कि केवल मंगलदास जी ही उतरेंगे, किन्तु हम लोग तो पाँच आदमी हैं।'

'हाँ पिता जी ने तो एक की बात कही थी। लेकिन आप लोग तो पाँच हैं। ठहरिये, मैं पूछ कर आता हूँ। पास ही एक परिवार ढाबा चलाता है यदि वहाँ कुछ व्यवस्था हो सके तो देख आऊँ।'

युवक चला गया। मधुकर और मंगलदास मोटर में लौट आये। जब आधे घण्टे में भी लड़का नहीं लौटा तो ड्राइवर ने स्तब्धता भंग की—'आध घण्टा हो गया, लड़का वापिस नहीं आया। यदि आज्ञा हो तो मणिहारों की धर्मशाला ले चलूँ?'

बाबू जी ने मधुकर की तरफ़ देखा और मधुकर ने बात चलाई 'अभी हिम्मत हारने की जरूरत नहीं। दो घर बाकी हैं। वहाँ भी सूचना दे दें कि तार के अनुसार हम लोग यहाँ पहुँच गए हैं। आखिर धर्मशाला तो है ही।"

× × × ×

'मधु-वाणी' के कार्यालय में संपादक पुरन्दरे लेखों की छानबीन कर रहे

थे। मंगलदास के पहुँचते ही वे अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए। दोनों हाथ जोड़ कर उसने अतिथियों का स्वागत किया। सब के बैठने पर संपादक जी ने पूछा—'कहाँ से आ रहे हैं, आप लोग ? मैं आप लोगों की क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

'ओह, आपने मुझे पहचाना नहीं। मुझे मंगलदास कहते हैं। हम लोग बम्बई से आ रहे हैं। मैंने अपने आने का तार भी भेजा था !' बाबू मंगलदास ने उत्तर दिया।

'हाँ, तार आया था। आप हैं, मंगलदास-मेसर्स मंगलदास श्यामलदास चीनी और काच के वर्त्तनों के व्यापारी। क्षमा कीजिए, मुझे आपके तार का ध्यान नहीं रहा। मधुवाणी में अपनी दूकान का विज्ञापन देने आए होंगे ? जरूर दीजिए। देश का सब से प्रसिद्ध पत्र है 'मधुवाणी'। दूर दूर तक जाता है। जल्दी ही पता चल जायगा कि इस पत्र में विज्ञापन देने से कितना लाभ होता है।"

संपादक ने अपना पत्र टेबल पर बिछाया और बिना किसी की बात सुने अपनी बोलते गए—'हमारे पत्र की ग्राहक संख्या देखते हुए हमारी दरें बहुत कम हैं। एक कालम के लिए पाँच सौ रुपए, आधे कालम के साढ़े तीन सौ और चौथाई कालम का ढाई सौ रुपए। इससे कम का विज्ञापन तो हम स्वीकार नहीं करते। मुख पृष्ठ की दर इससे दुगनी, पीछे के पेज की ड्योढ़ी और विशेष स्थान के विशेष। आप अपना स्थान और कागज़ चुन लीजिए।'

'हम विज्ञापन देने नहीं आए हैं।' बाबू मंगलदास ने रोष को रोकते हुए कहा।

'फिर आप लोग समाचार देने आए होंगे, किन्तु हम पी. टी. आई. और यू. पी. आई. के सिवाय कोई समाचार नहीं छापते। यदि किसी को कुछ छपाना है तो पैसे देने पड़ेंगे। निजी समाचारों की दर वही है जो विज्ञापनों के लिए निश्चित है। यदि किसी सभा-सोसायटी का समाचार है तो पचास प्रतिशत कमीशन। शीघ्र बताइए, जिससे आपके समाचार इसी अंक में दिए जा सकें।" संपादक बोला।

'हम समाचार प्रकाशित कराने भी नहीं आए हैं।' मंगलदास ने उत्तर दिया।

'फिर आप लोग बम्बई प्रान्त के लिए एजेन्सी लेने आए होंगे ? किन्तु वह तो नहीं दी जा सकती। हमें अपने वर्तमान एजेण्ट से कोई शिकायत नहीं है। और नमस्ते कह कर संपादक जी बगल के कमरे में चले गए।

संपादक के जाते ही पाँचों यात्री भी उठ खड़े हुए। अब मोहन का वाचनालय ही शेष रह गया था।

× × × ×

दिन के दो बज गए। इन लोगों ने अब तक चाय भी नहीं पी थी। मोटर धीमी हो कर वाचनालय के सामने ठहरी। अभी सब लोग उतरे भी नहीं थे कि मोहन बाहर आया और दरवाज़ा बन्द करके बोला—प्रातःकाल से आप की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मालूम होता है दो पहर की गाड़ी से पहुँचे हैं आप लोग। अभी भोजन भी नहीं किया होगा। चलिये स्थान पर चलें।'

इस बात को सुन कर सबके मुरझाये हुए हृदय मारे प्रसन्नता के खिलना ही चाहते थे कि मोहन ने कहा—

'कल आपका तार मिलते ही मैंने मणिहारों की धर्मशाला में सप्ताह भर के लिए एक कोठरी सुरक्षित करा ली थी। मेरे कारण कोठरी मिल भी गई अन्यथा आजकल पूना में जगह मिलना उतना ही कठिन है जितना सहारा में पानी का मिलना। आपके ड्राइवर को धर्मशाला मालूम ही होगी। आप लोग चलिये मैं आता हूँ।'

मोहन ने यह सब बड़ी सरलता से कहा।

ड्राइवर के बार बार कहने पर भी मंगलदास धर्मशाला नहीं गये, किन्तु अब कोई दूसरा रास्ता नहीं था। धर्मशाला में वैसे ही गन्दगी होगी, इस पर यदि बम्बई के किसी परिचित ने उन्हें वहाँ देख लिया तो कानों कान पूरे शहर में बात फैल जाएगी। बड़े शौक से पूना गए थे और ठहरे कहाँ, तो धर्मशाला में। यह कौन सोचेगा कि धर्मशाला तक पहुँचने में उनकी टैक्सी का बिल ही हो गया था—चौंतीस रुपए चौदह आना।

× × × ×

मणिहारों की धर्मशाला में कमरा सुरक्षित था। प्रबन्धक ने दरवाजा

खोला और चुन्नू ने सामान पहुँचा दिया। जब ये थके-माँदे लोग अपने कमरे की तरफ मुड़े तो अपने आगे रावबहादुर भिंडे और प्रिन्सिपल मराडने को देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"वाह मंगलदास जी, आप तो आप ही हैं!" प्रिन्सिपल मराडने ने उलाहना दिया—'रास्ते में सुबह मिले लेकिन इतना नहीं कह सके कि राव-बहादुर घर पर नहीं मिले। आप ही को ढूँढ रहा हूँ, अपने घर ले चलने के लिए।'

रावबहादुर ने सहानुभूति के स्वर में कहा—'मुझे भी बहुत दुःख है। आपके तार मिलने से पहले ही मैं बम्बई चला गया था। लौटा तो तार मिला और ज्यों का त्यों आपको ढूँढने निकल पड़ा कि आपको घर ले चलूँ।'

इतने में वहाँ संपादक भी पहुँच गए। रावबहादुर ने संपादक का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, संपादक जी! आप भी बाबू मंगलदास को अपने घर लिवा ले जाने के लिए आए होंगे? क्या बताऊँ, पूना का प्रत्येक नागरिक बाबूजी से स्नेह करता है और चाहता है कि उन्हें अपने घर ले जाए।'

संपादक जी ने हाँ में हाँ मिलाई—'जी हाँ! इसी लिए तो भागा भागा आया हूँ।'

इतने में मोटा कम्मल ओढ़े प्रोफेसर साहब रिक्शे से उतरे और दूर ही से चिल्लाने लगे—'मंगलदास जी क्षमा कीजिए, मेरा बेटा निरपराध है। यदि पाँचों के लिए रसोई घर में स्थान न था तो मैं वहाँ सो जाता और आप लोगों को मेरे कमरे में ठहराया जा सकता था। चलिए, मैं आपको बुलाने आया हूँ।'

इतने में मोहन भी पहुँच गया। उसने देखा कि अतिथि और आतिथेयों में इस बात पर तकरार हो रही है कि कौन आतिथेय अतिथि को अपने घर ले जाए, तो उसने गर्ज कर कहा—'बस बहुत हो चुका आप लोगों का आतिथ्य। मंगलदास जी सात दिन तक मेरे मेहमान हैं। आप इन्हें ले जा सकते हैं किन्तु इनके रहने के लिए कमरा सुरक्षित कराया है, उसका किराया कौन देगा?'
'तब तो आपको यहीं रहना चाहिए।' रावबहादुर बोले। 'यह कमरा बुरा तो नहीं है—'प्रिन्सिपल ने हाँ में हाँ मिलाई।

'शहर के बीचों बीच है, यह धर्मशाला' प्रोफेसर ने समर्थन किया ।

'पूरी सुविधाएँ हैं, साहब' संपादक के अनुमोदन के साथ प्रस्ताव पास हो गया ।

मैं कितना प्रसन्न हूँ

उन दिनों भारत की राजनीति गरम दल और नरम दल में बँटी हुई थी। काँग्रेसियों का एक समूह गरम दल कहलाता था। इस दल में लाल, बाल और पाल अर्थात् लाला लाजपतराय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्रपाल थे। दूसरा गुट नरम दल कहलाता था जिसके मुखिया गोखले, मालवीय जी और फीरोज शाह मेहता थे। अभी महात्मा जी सूरज बन कर भारत की राजनीति में नहीं आये थे। यदि इन सब नेताओं को नक्षत्रों की उपमा दी जाए तो यह कहा जा सकता है कि गोखले चन्द्रमा की तरह थे जो पश्चिम में ढल रहे थे। अभी प्रभात नहीं हुआ था, फिर भी पूर्व दिशा में महात्मा गांधी रूपी सूर्य की लालिमा छा गई थी। एक कोने पर शुक्र की तरह बाल गंगाधर तिलक चमक रहे थे। जनता इस शुक्र के तेज से प्रभावित थी किन्तु सरकारी क्षेत्रों में नरम दल के नेताओं का प्रभाव था। नरमदली नेता समझदार और विद्वान समझे जाते थे। नरमदली लोगों को नगर-पालिका तथा ऐसी ही संस्थाओं में मनोनीत किया जाता था जिससे समय पड़ने पर

सरकार का पल्ला भारी रह सके।

किन्तु जिस समय की बात लिखी जा रही है वह जमाना काफी बदल चुका था। उन दिनों कई बार छोटे-छोटे मामलों में भी नरमदली लोग सरकार का साथ न दे कर गरम दल वालों का साथ देने लगते थे और सरकार को भी चुप रहना पड़ता था। इन्हीं दिनों पद्मापुर नगर पालिका के अध्यक्ष पद के लिए नरम दल की ओर से प्रोफेसर परांजपे और गरम दल वालों की तरफ से ऍडवोकेट जेधे खड़े किये गये। नगर पालिका के सत्तावन सदस्यों में से २२ गरम दल के, १९ नरम दल के और १५ सरकार के मनोनीत सदस्य थे। यदि सारे मनोनीत सदस्य सरकारी आज्ञा मान कर मत देते तो परांजपे को ३४ और जेधे को २३ मत मिलते किन्तु गुप्तचर से पता चला कि पाँच मनोनीत सदस्य अपने मत जेधे को देंगे। इन पाँचों सदस्यों का कहना था कि अध्यक्ष के चुनाव में हमें सरकार की आज्ञा का पालन ही करना चाहिए ऐसी बात नहीं है। वे इस मामले में स्वतन्त्रता चाहते थे। किन्तु पद्मापुर के कलेक्टर के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था।

कलेक्टर साहब एक दिन मेरे पास आये। सोच विचार में उलझे हुए थे। मैं उनके कार्यालय में मुख्य क्लर्क था। वे मुझ पर भरोसा करते थे। मैं भी उनके दुःख-सुख में साथ रहता था। उनके चिन्तित चेहरे को देख कर मैं बोला—

"क्या बात है साहब? इस असमय में मेरे गरीब खाने पर आपका कैसे आना हुआ? आप इतने चिन्तित क्यों हैं?

"क्या कहूँ यशवन्तराव? आज दस वर्ष की नौकरी हाथ से जा रही है। मेरे सामने जीने मरने का प्रश्न है। तुममें समय पर काम करने की बहुत सूझ है। यदि आज कुछ बुद्धि लड़ा सको तो मैं वैतरणी के पार लग जाऊँगा।"

इतना कह कर उन्होंने मेरे हाथ में बम्बई के गवर्नर का फलीता दिया जिसमें लिखा था कि पद्मापुर के चुनाव में प्रोफेसर परांजपे की जीत होनी ही चाहिए। उनका हारना तुम्हारे कारनामे पर धब्बा लगना है और उनकी जीत में तुम्हारी प्रतिष्ठा है। यदि परांजपे जीते तो तुम्हें उचित पुरस्कार मिलेगा।'

G 2173

'इसमें इतनी चिन्ता की क्या बात है साहब ?' मैंने पत्र पढ़ कर उनसे पूछा—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि निर्वाचित सदस्यों में गरम-दली लोगों की अधिक संख्या है, किन्तु हमारे भी तो पन्द्रह सदस्य हैं। उनके रहते वे लोग कैसे जीत सकते हैं ?'

'यही तो बड़ी कठिनाई है यशवन्त। हमें पता चला है कि इन मनोनीत सदस्यों में से कुछ फिरण्ट हो गए हैं। उनमें से कुछ लोग ऍडवोकेट जेधे को अपना मत देना चाहते हैं। उनका नेता है सदाशिवराव वकील।'

"फिर कौन बड़ी बात है !' मैंने प्रदर्शित किया जैसे यह मेरे बाँये हाथ का खेल है। 'सदाशिवराव को धमकाइये। साफ कह दीजिये कि यदि उसने सरकार का साथ नहीं दिया तो उसकी वकालत हवा हो जाएगी।"

"यह तो सब हो सकता है, लेकिन चुनाव तो कल होगा।"

'यदि ऐसा है तो मनोनीत सदस्यों को बरखास्त कर दीजिये।' मैंने कहा।

"नहीं यशवन्तराव। अब वे दिन चले गये जब ऐसी धाँधली चल सकती थी। कुछ ऐसा उपाय सोचो कि लाठी भी न टूटे और साँप भी मर जाए।'

'समझा साहब, समझा।' थोड़ी देर तक अपना सिर खुजा कर मैंने कहा—'एक झूठा तार अभी सदाशिवराव के पास भिजवा दीजिए कि उनके पिता कमलापुर में सख़्त बीमार हैं। देखना हो तो तुरन्त आ जाएँ। आप तार कर दीजिए, बाकी काम मैं कर लूँगा।'

'अगर तुम्हारी योजना सफल हो गई यशवन्त तो मैं बड़ा आभारी रहूँगा। तार देना कठिन नहीं। अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।' यह कह कर कलेक्टर चले गये।

× × × ×

मैं चाय पानी से निवृत्त हुआ। थोड़ी देर आराम करने के बाद सैर करने के बहाने सदाशिवराव के घर की ओर चला। सदाशिवराव अपने बड़े लड़के और पत्नी के साथ बरामदे में बैठे थे। प्रतीत होता था घरेलू मामले में

बात चीत हो रही है। मैं दूर से ही ताड़ गया कि गोली निशाने पर लगी है। मैंने निकट जा कर पूछा—"सब ठीक तो है न ?'

'यों तो सब ठीक है यशवन्तराव, लेकिन मैं एक संकट में फँस गया हूँ। तुम्हें याद ही कर रहा था।' वकील साहब ने तार मेरे सामने रखते हुए कहा—'इसे पढ़ लो। सारा हाल मालूम हो जाएगा।'

मैंने तार पढ़ा। लिखा था—

'सहसा तुम्हारे पिता का रक्त-चाप बढ़ गया है। पता नहीं किस समय क्या हो। वे एक बार तुम्हें देख लेना चाहते हैं। हो सकता है तुम्हारे आने से बीमार पर अच्छा असर पड़े।'

'इसमें चिन्ता की क्या बात है ?' तार पढ़ कर मैंने कहा—'प्रातःकाल आठ बजे की गाड़ी से आप जा सकते हैं। रात भर में ऐसा क्या हो जाएगा ? अगर ज्यादा तकलीफ हो तो एकाध दिन और रह जाइए। स्वास्थ्य ठीक हो तो रात की गाड़ी से लौट आइये। रहा कचहरी का काम सो मैं कलेक्टर साहब से कह कर ठीक कर दूँगा। उसी के लिए आप मेरी याद कर रहे होंगे ?'

'मुझे कचहरी की चिन्ता नहीं है यशवन्तराव जी। मुझे तो कल यहाँ चार बजे किसी भी तरह रहना चाहिए। कल नगरपालिका के अध्यक्ष का चुनाव.........'

मैंने बीच में ही बात काट कर कहा—'आपके एक मत से क्या हो जायगा वकील साहब ? सरकार के पन्द्रह मत तो निश्चित हैं। प्रोफेसर परांजपे किसी भी तरह चुन लिये जाएँगे। रही कलेक्टर साहब की बात, सो मैं उन्हें आपकी अनुपस्थिति का कारण समझा ही दूँगा।'

यशवन्त तुम जन्म भर क्लर्की करके भी बुद्धू के बुद्धू ही रहे। तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि मैंने ऍडवोकेट जेधे को अपना मत देने का संकल्प किया है। मेरे कारण ही चार-पाँच मनोनीत सदस्यों ने सरकार के विरुद्ध मत देने का निश्चय किया है। तुम बीस साल से कलेक्टर के नीचे काम कर रहे हो। तुम क्या जानो हवा का रुख किधर है। अब समय बदल रहा है। इन दिनों गरम दल वालों का प्रभाव बढ़ रहा है। देश में उसी का

मान बढ़ेगा जो गरम दल वालों का साथ देगा। इसीलिए तो मुझे कल यहाँ रहना चाहिए। सूझ नहीं रहा है कि क्या किया जाए ?

बात की वकील साहब की पत्नी ने—'मैं तो इन्हें कह रही हूँ, छोड़ो यह चुनाव-उनाव। पिताजी के पास जाना तुम्हारा धर्म है। ईश्वर न करे, कल को कुछ हो जाए तो सदा के लिए मत्थे पर कलंक लग जाएगा। चुनाव तो होते ही रहते हैं। पिताजी का मुँह कब देखने को मिलेगा ?'

जब पत्नी यह कहते कहते आँसू पोंछने लगी तो सदाशिव राव ने उस साध्वी को जिस तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से देखा था उसे मैं भूल नहीं सकता। मानों वे कह रहे हों—मैं कमलापुर जाऊँ या न जाऊँ यदि पिताजी को मरना है तो वे जरूर मरेंगे किन्तु अगर मैं कल यहाँ रहता हूँ तो सरकार विरोधी की जीत होती है और अगर नहीं रहता तो उसकी हार निश्चित है। किन्तु उन्होंने केवल इतना ही कहा—'कुछ भी हो, मुझे जाना पड़ेगा और कल तक लौटना भी पड़ेगा। यशवन्तराव तुम्हीं इसकी कोई युक्ति निकालो।'

'यह कौन कठिन है' मैंने सरलता से कहा--'किसी से मोटर ले जाइये। कमलापुर साठ मील तो है। सुबह निकले तो दोपहर तक पहुँच जाओगे। एक डेढ़ बजे भी चल दोगे तो चार बजे तक पहुँच जाओगे।'

मैंने उपाय तो बता दिया किन्तु उन दिनों पन्नापुर में केवल तीन मोटरें थीं। एक कलेक्टर के पास, दूसरी सेठजी के यहाँ और तीसरी का मालिक था बैंक मैनेजर। तीनों में से कोई मोटर देगा इसकी आशा नहीं थी। इसीलिए वकील साहब ने कहा—

'तुमने उपाय तो अच्छा बताया, किन्तु तीनों मोटरों में से मुझे एक भी नहीं मिल सकती।'

थोड़ी देर सोच कर मैंने कहा—'मैं कलेक्टर से पूछ कर जवाब दूँगा।'

वकील साहब ने निराशा भरे स्वर में कहा--'कलेक्टर साहब मुझे मोटर नहीं देंगे। उन्हें मालूम हो चुका है कि मैं अपना मत जेधे को दे रहा हूँ।

'किन्तु......'

'किन्तु विन्तु कुछ नहीं पिताजी !' सदाशिवराव अपनी बात पूरी तरह

कह भी नहीं पाये थे कि उनके पुत्र ने कहा—'मत-दान तो गुप्त होता है। कौन जान सकता है, किसने किसको मत दिया। जाइये। आप अपना काम कीजिये साहब।'

सदाशिवराव चुप रहे, जिसका अर्थ था वे इस प्रबन्ध से सहमत हैं।

× × × ×

प्रातःकाल दस बजे मैं और सदाशिवराव कमलापुर पहुँचे। मैं यह कह कर साथ हो लिया था कि कलेक्टर ने मेरी जिम्मेदारी पर मोटर दी है और मुझे गाड़ी के साथ जाने का आदेश मिला है। कमलापुर पहुँचने पर पता चला कि सदाशिवराव के पिताजी भले-चंगे हैं और खेत में काम देखने गये हैं। हम लोग सीधे डाक्टर मदनलाल के पास गये। उन्होंने साफ़ कहा कि मैंने सदाशिवराव को कोई तार नहीं दिया। हम लोग तार आफ़िस भी गये। तार बाबू ने बताया कि वह तार इस कार्यालय से गया ही नहीं।

'यशवन्तराव, कहीं न कहीं दाल में काला है!' इस खोज के बाद सदाशिव ने मत व्यक्त किया।

'दाल में काला तो है ही। मुझे तो प्रोफेसर परांजपे की चाल मालूम होती है।' मैंने धीरज बँधाते हुए कहा।

'किन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा जब मैं चार बजे से पहले ही चुनाव-भवन में पहुँचूँगा।' सदाशिवराव ने हँसते हँसते कहा।

हम लोग सदाशिवराव के घर भी गये। माताजी बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने कुछ खा कर जाने का आग्रह किया। पिताजी भी खेत से लौट आये। अच्छा भोजन बना' खीर-पूरी खा कर हम लोग कुछ लेटे ही थे कि नींद आ गई। लगभग डेढ़ बजे पद्मापुर की तरफ रवाना हुए।

साढ़े तीन बज चुके थे। जंगल के बीच से गुजर रहे थे। पद्मापुर केवल दस मील रह गया था। मोटर के इंजन से 'ठस' की आवाज हुई और मोटर बेसुरे सुर में चीख कर खड़ी हो गई। ड्राइवर ने सेल्फ़ स्टार्टर को खींच कर मोटर को चलाना चाहा, किन्तु मोटर घर-घरा कर रह गई। हम दोनों ने मोटर को कुछ दूर तक धकेला किन्तु वह स्टार्ट होने का नाम नहीं ले रही थी। ड्राइवर ने

एक के बाद दूसरा पेंच खोला और कसा लेकिन मोटर टस से मस न हुई।

सदाशिव की बेचैनी देखने लायक थी। कभी सीट पर बैठते कभी इंजन देखने के लिए नीचे उतरते। कभी जेब से घड़ी निकाल कर देखते कभी ड्राइवर को गालियाँ निकालते। बड़ी मुश्किल से गाड़ी स्टार्ट हुई। उस समय सदाशिव की घड़ी में चार बजने में पाँच मिनट कम थे। ज्यों ज्यों गाड़ी आगे बढ़ रही थी सदाशिवराव को अनुभव हो रहा था उनके यश का सूर्य पश्चिम में डूबने जा रहा है। फिर भी वे कुछ सोच रहे थे। संभवतः वे इस उधेड़ बुन में लगे हुए थे कि शेष समय का सदुपयोग किस तरह किया जा सकता है।

जब हम नगर-समिति के सभा-भवन में पहुँचे तो साढ़े चार बज चुके थे। चुनाव हो चुका था। तेईस के विरुद्ध तेंतीस मतों से प्रोफेसर परांजपे अध्यक्ष निर्वाचित हो गये। मित्र उन्हें बधाई दे रहे थे। भीड़ को चीर कर सदाशिव प्रोफेसर के पास गये। पास खड़े हुए एक व्यक्ति के हाथ से उन्होंने हार छीना और प्रोफेसर परांजपे के गले में डालते हुए बोले—'मुझे शोक है, मैं आपको अपना मत नहीं दे सका। यशवन्तराव साक्षी है, मैंने समय पर आने की बेहद कोशिश की। मेरी बधाई स्वीकार कीजिये।' और फिर अँग्रेजी में यह कहते हुए कि I alone know how immensly pleased I am (मैं ही जानता हूँ मैं कितना प्रसन्न हूँ) उन्होंने प्रोफेसर परांजपे को छाती से लगा लिया। पास खड़े हुए लोगों ने करतल ध्वनि से इस आलिंगन को सराहा। मैं चुप चाप खड़ा था।

जंगल की कली

जिस समय इम्फाल के मोर्चे पर जापानी फौजों के आक्रमण का भय दिन-रात बना हुआ था, वहाँ की व्यवस्था का पूरा भार कप्तान रिचर्डसन पर था। एक ओर खाइयाँ खोदी जा रही थीं तो दूसरी तरफ़ मिट्टी के ऊँचे-ऊँचे टीबे बनाये जा रहे थे। कहीं घने जंगलों में सैनिकों के रहने के लिए तम्बू गाड़े जा रहे थे तो बॉम्बर चलाने वालों को धोखा देने के लिए नकली बस्तियाँ बसाई जा रही थीं। इन सब कामों में हजारों स्त्री पुरुष लगे हुए थे और यह सब कुछ हो रहा था रिचर्डसन के निरीक्षण में।

एक दिन कप्तान रिचर्डसन काम की देख रेख करके लौट रहे थे कि उनकी निगाह एक पहाड़ी स्त्री पर गई जो दूसरे मजदूरों के साथ काम कर रही थी। उस पहाड़ी स्त्री ने दोनों हाथों से सिर का टोकरा सँभाल रखा था। आँखें उसकी छोटी-छोटी थीं किन्तु उनमें मादकता थी। जब पलकें जरा-सी खुलतीं तो उन नन्हीं-नन्हीं आँखों में पिंजरे में फुदकते हुए खंजन पक्षी की तरह दोनों पुतलियाँ दिखाई दे जातीं। वह स्त्री कुमारी मालूम होती थी। वह थी मामूली

मजदूर, निम्न-जाति की, जिसका समाज में कोई आदर नहीं, किन्तु इससे क्या होता है ? वह सुन्दरता, लावण्य और स्त्री सुलभ लज्जा की मूर्ति तो थी। यह आवश्यक नहीं कि सुन्दर फूल राज-उद्यानों में ही खिलें। घने जंगलों में भी सुन्दर फूल खिलते हैं जो उस वातावरण में और भी अधिक मोहक लगते हैं।

उस स्त्री का नाम था पम्पिनी। रिचर्डसन की निगाह अन्य मजदूरों को चीरती हुई पम्पिनी पर गई।

कप्तान रिचर्डसन का चरित्र शुद्ध और निर्मल था। उन्होंने आज तक किसी स्त्री के साथ कोई अनुचित वर्त्ताव नहीं किया था। वे फौज में रहते हुए नृत्य या दूसरी चीजों से अलग रहते थे, इसीलिए उनके साथी उन्हें भोंदू कह कर चिढ़ाया करते थे। किन्तु आज रिचर्डसन भी उसी भावना के वशीभूत हो रहे थे जिसने वड़े वड़े ऋषि-मुनियों को भी परास्त कर दिया। मेनका ने वशिष्ठ को और उर्वशी ने विश्वामित्र को विचलित कर दिया था। पम्पिनी के सौन्दर्य ने कप्तान रिचर्डसन का मन मोह लिया। अन्तर इतना ही था कि मेनका, उर्वशी आदि ऋषियों के तप भंग करने के लिए ठाट-वाट से आती थीं किन्तु पम्पिनी अपना निश्छल और पवित्र सौन्दर्य लिये बिना किसी छल-छद्म या स्वार्थ और उद्देश्य के काम कर रही थी। किन्तु पम्पिनी को देख कर कप्तान के मन में भी वही आनन्द उत्पन्न हुआ जो अप्सराओं को देख कर ऋषियों के मन में हुआ होगा।

जिस दिन से कप्तान ने पम्पिनी को देखा था उसी दिन से वे प्रतिदिन दो-तीन वार उस मार्ग पर जा कर खड़े हो जाते जहाँ से पम्पिनी पत्थर-मिट्टी के टोकरे सिर पर लादे गुजरती थी। पम्पिनी को देख-देख कर उनकी आँखें तृप्त नहीं होती थीं। कप्तान प्रयत्न करते थे कि इस मोह से किसी तरह छुटकारा पाएँ। किन्तु इस फन्दे से ज्यों ज्यों निकलना चाहते थे त्यों त्यों और भी फँसते जाते थे। वे समझ नहीं रहे थे, आखिर पम्पिनी में ऐसा क्या है जिसका इतना प्रबल आकर्षण है।

रेत के कणों से जब चुम्बक पत्थर का स्पर्श होता है तो लोहे के कण

उससे चिपक जाते हैं। रेत में ताँबे, सीसे या सोने के कण भी होते हैं किन्तु चुम्बक का उनसे कोई सरोकार नहीं होता।

सभी फूल सुन्दर होते हैं। एक फूल से दूसरे फूल की तुलना करना उचित नहीं है। फूलों की सुन्दरता का अनुभव हृदय के भावों पर भी निर्भर है। इसीलिए तो एक को गुलाब का फूल अच्छा लगता है तो दूसरे को मोतिया का! इसलिए कप्तान को पम्पिनी अत्यन्त सुन्दरी और मनमोहक लगी। उसे देख कर भी कप्तान का मन तृप्त नहीं होता था। पम्पिनी की चाल में उन्हें मृगी का भ्रम होता। जब वह सब मजदूरों के साथ गीत गाती हुई इधर से उधर जाती तो कप्तान को उस गाने में कोयल के स्वर से भी अधिक मिठास का भान होता था।

कप्तान रिचर्डसन अँग्रेज थे। सेना-विभाग में ऊँचे पद पर थे। पम्पिनी गँवार! दोनों में कितनी गहरी खाई थी। क्या इस खाई को आसानी से पाटा जा सकता था? कप्तान उसकी बोली को भी नहीं समझते थे। कप्तान का हाल उस सूर्यमुखी फूल की तरह था जो सूरज के साथ अपने मुख को परिवर्तित करता है। प्रातःकाल पूर्व की तरफ आनन्दविभोर हो कर खिल उठता है तो सायंकाल पश्चिम की तरफ निराशा से शिथिल हो झुक जाता है। दिन पर दिन बीतते हैं। सूर्य अपने स्थान पर रहता है, और सूर्यमुखी अपने स्थान पर। दोनों का मेल कभी नहीं होता। रिचर्डसन कभी कभी सोचते क्या हमारी दशा भी उस फूल की तरह होगी?'

पम्पिनी को अपने सामने देख कर उनके हृदय में भी उसी प्रकार की उमंग उमड़ती थी जैसे पूर्णिमा के चाँद को देख कर समुद्र प्रफुल्लित हो जाता है। समुद्र चन्द्र के प्रतिबिम्ब को देख कर प्रसन्न होता है, नाचता है और समझता है कि उसने अपने प्रिय को पा लिया किन्तु समय की गति के साथ जब चन्द्रमा छिप जाता है तो समुद्र भी शान्त हो जाता है। कप्तान रिचर्डसन भी इन दो विरोधी भावनाओं में से हो कर प्रतिदिन गुजरते थे।

समुद्र और सूर्यमुखी जड़ हैं। कप्तान चेतन थे, मनुष्य थे और थे योद्धा। उन्हें अपनी क्रिया-शक्ति पर भरोसा था। उन्हें विश्वास था एक दिन

उनकी कामना पूरी होगी। उन्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन जब वे काम की देख रेख करके लौट रहे थे, मार्ग में पम्पिनी सिर पर टोकरी उठाये जाती हुई मिली। रंग-बिरंगे कपड़ों में स्थान-स्थान पर काँच के टुकड़े जड़े थे और उस पहाड़ी वेश-भूषा में पम्पिनी बिल्कुल तितली लगती थी। कप्तान का बाल-हृदय उस तितली को पकड़ने के लिए मचल उठा। कप्तान और पम्पिनी के बीच बहुत-सी बाधाएँ थीं किन्तु आज कप्तान की लालसा इतना प्रबल रूप धारण कर चुकी थी, जितना प्रबल रूप वर्षा के बाद पहाड़ी नाले धारण करते हैं। कुछ देर तक तो नाले का पानी घास-पात से रुका रहता है किन्तु जब पानी की मात्रा बढ़ती जाती है तो वे बन्धन भी बह जाते हैं। इसीलिए कप्तान को रोकने वाले बन्धन—उनका सामाजिक महत्व, लोक-लज्जा, सम्मान, जात-पाँत, सेना का उच्च पद, सभी कुछ सहसा लुप्त हो गये। उन्होंने अपनी गाड़ी पम्पिनी के पास रोकी। स्वयं नीचे उतरे और एक हाथ से झटका दे कर पम्पिनी के सिर का टोकरा नीचे गिरा दिया। वह बेचारी पूरी तरह सँभल भी नहीं पाई थी कि उसे दोनों हाथों से उठा थैले की तरह जीप की दोनों सीटों पर डाल दिया। स्वयं उछल कर स्टियरिंग पर बैठे। स्टार्ट करते ही गाड़ी हवा से बात करने लगी। यह सब इतनी तेजी से हुआ कि जब पम्पिनी ने सँभल कर बाहर की तरफ नज़र दौड़ाई तो गाड़ी बस्ती से बाहर घने जंगल से गुजर रही थी।

पम्पिनी के इस तरह जबर्दस्ती उड़ा लेने से इम्फाल के मजदूरों में हाहाकार मच गया। बात की बात में यह खबर चारों तरफ फैल गई। सैकड़ों मजदूर काम छोड़ कर चौधरी के घर इकट्ठे हुए।

'कप्तान के घर को आग लगा दो।' एक ने गुस्से से लाल हो कर कहा।

'उसे जिन्दा जला दो।' दूसरे ने सुझाव रखा।

'यहाँ हमारी बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं रह सकतीं।' तीसरे ने चिन्ता प्रकट की।

'मरने दो इन.........को।' चौथा बोला।

'चलो हम सब अपने अपने गाँव चलें।' पाँचवें का प्रस्ताव था।

'छोड़ो भी इस मनहूस काम को, इसमें रखा ही क्या है ?' किसी ने कहा ।

जितने मुँह उतनी बातें । एक तूफ़ान मचा हुआ था । मजदूरों का शोर-गुल सुना तो लेफ्टिनेएट लिटहार्ट वहाँ पहुँचे । उनके आते ही सन्नाटा छा गया । ग्रामीण जनता पर अँग्रेजों का कुछ ऐसा ही आतंक था । लेफ्टिनेएट मोटर से उतर कर सीधे चौधरी के पास पहुँचे और बोले—"चौधरी क्या बाट है ?"

'कुछ नहीं सरकार । कप्तान हमारी एक लड़की को ले कर भाग गये ।' चौधरी ने उत्तर दिया ।

'फिर टुम क्या मँगटा है ? ये लोग क्या मँगटा है ? यहाँ सब क्यों जमा हो गया ?' लेफ्टिनेएट ने अधिकार भरे स्वर में पूछा ।

'सजा होनी चाहिए सरकार !' चौधरी ने विनय से कहा ।

'हम उसको बड़ी सजा देगा । तुम इनको पैले काम जाना बोलो ।' लेफ्टिनेएट ने आदेश दिया ।

'क्या सजा दोगे सरकार ?' डरते डरते चौधरी ने प्रश्न किया ।

'तुम बोलता सो सजा देगा । पैले इनको काम जाना बोलो ।' लेफ्टिनेएट ने आदेश दुहराया ।

'फाँसी की सजा होना सरकार ।' चौधरी ने विनय पूर्वक किन्तु दृढ़ता से इच्छा प्रकट की ।

'कबूल, चौडरी कबूल ! हम कप्टान को फाँसी देगा ।' तुम इनको पैले काम बोलो ।' लेफ्टिनेएट ने फिर अपना आदेश तिहराया ।

लेफ्टिनेएट मजदूरों में बढ़ते हुए असन्तोष को कम करना चाहते थे । वे चौधरी की हर बात मानने के लिए तैयार थे । बस शर्त थी कि मजदूर पहले काम पर जाएँ ।

चौधरी को विश्वास नहीं हो रहा था कि एक अँग्रेज के लिए फाँसी की सजा इतनी सरलता से मान ली जाएगी । उसने आश्चर्य, विस्मय और प्रसन्नता से अपने सभी पहाड़ी साथियों की तरफ़ देखा । उन्होंने उन्हीं नज़रों से अपने बाज़ूवाले साथियों की तरफ़ देखा । प्रशान्त सरोवर में एक कंकर डालने के बाद

जिस प्रकार उस विन्दु से चारों तरफ़ लहरें दौड़ती हैं और किनारों से टकरा कर फिर वापस उसी विन्दु तक आती हैं ठीक इसी प्रकार लेफ्टिनेएट के आश्वासन के बाद विस्मय, आश्चर्य और हर्ष की यह लहर उस जनसमुदाय में दौड़ती हुई अन्तिम व्यक्ति तक पहुँच कर पुनश्च चौधरी तक पहुँच गई। चौधरी मतलब समझ गए।

"मंजूर है सरकार" चौधरी ने उत्तर दिया। लेफ्टिनेएट अपनी गाड़ी में बैठ कर चले गए। उनके जाने के बाद "फाँसी" "फाँसी" की हर्षध्वनि में मजदूर बिखर गए और अपने अपने काम पर चले गए।

× × × ×

सायंकाल तक कैप्टन रिचर्डसन को गिरफ्तार कर लिया गया था। तुरन्त कोर्ट मार्शल बैठा। मजदूरों के जोश को ठण्डा रखने के लिए चौधरी को भी जजों में स्थान दिया गया। सब से पूर्व पम्पिनी की गवाही हुई। जिसे सुन कर जजों के आश्चर्य और चौधरी के क्रोध का पारावार नहीं रहा।

"कप्तान ने मेरे संग कोई बुरा या अनुचित व्यवहार नहीं किया" पम्पिनी ने धीमे किन्तु स्पष्ट स्वर में अपना बयान लिखाना प्रारम्भ किया। "मुझे मोटर में डाल देने के बाद मोटर बड़े वेग से जा रही थी। उसमें से कूदने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मोटर में मेरे सिर ऊपर उठाने से पहले मोटर बस्ती से बहुत दूर निकल चुकी थी। इसलिए सहायता के लिए चिल्लाना निरर्थक था। रास्ते पर कोई आदमी दिखाई नहीं पड़ रहा था। कुछ दूर सड़क से चलने के उपरान्त मोटर खेतों और जंगली पगडंडियों से मार्ग तय करती हुई एकाएक पेट्रोल समाप्त होने के कारण एक निविड़ वन में रुक गई। मोटर ठहरने के बाद प्रथम बार कप्तान ने मेरी तरफ़ देखा। मैंने एक तरफ़ मुख मोड़ लिया तो वे मोटर से उतर कर उस तरफ़ आ कर मेरे सम्मुख खड़े हो गए, जिधर मेरा रुख था। मैंने अपना मुख दूसरी तरफ़ मोड़ लिया। कप्तान तुरन्त मोटर के पीछे से हो कर दूसरी तरफ़ आ कर खड़े हो गए। इस प्रकार कुछ देर तक मेरा एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ रुख पलटना और उनका मेरे सम्मुख आ कर खड़े हो जाना जारी रहा। अन्त में मैं ही हारी या यों कहिए कि उस

समय तक मुझे विश्वास हो चला था कि कप्तान मुझ से बलात् कोई दुर्व्यवहार नहीं करेंगे। मैं मोटर में सिर झुकाए चुपचाप बैठी रही और कप्तान भी बजाए खड़े रहने के मेरे सम्मुख पड़ी हुई एक शिला पर बैठ गए। मुझे नहीं मालूम कि इस तरह बैठे बैठे कितना समय गुज़र गया होगा। बीच बीच जब कभी कुतूहलवश मैं ज़रा-सा सिर उठा कर कप्तान की तरफ़ देखती तो पाती कि वे एक-टक मेरी तरफ़ देख रहे हैं। सम्भवतः वे किसी प्रश्न का मुझ से उत्तर चाहते थे परन्तु न तो वे मेरी भाषा में प्रश्न कर सकते थे और न मैं उनकी भाषा में उत्तर दे सकती थी। अन्ततः आपके सिपाही आए और गिरफ्तार कर हमें यहाँ ले आए।"

"छोकरी बेईमान हो गई है" चौधरी ने तिलमिला कर कहा।

"फिर तुम क्या चाहते हो?" जजों में से एक ने पम्पिनी से दर्याफ्त किया।

"यथोचित दण्ड ताकि कप्तान फिर किसी को तंग न करें" पम्पिनी ने उत्तर दिया।

"सही कहती है, छोकरी! सही कहती है।" चौधरी ने उतावलेपन से जजों की तरफ़ देखते हुए कहा। "यथोचित दण्ड अवश्य होना चाहिए। वह भी प्राण दण्ड जिसका कि लेफ्टिनेण्ट साहब ने वायदा किया है।"

"तुम्हें कुछ कहना है रिचर्डसन?" जजों में से एक ने अपराधी से पूछा।

"पम्पिनी ने जो कुछ कहा है सर्वथा सत्य है" रिचर्डसन ने धीरता के साथ उत्तर दिया "ज़ाहिर है मैंने कोई पाप नहीं किया है। मैंने पम्पिनी के सौन्दर्य, और शालीनता से विनयपूर्वक प्रेम किया था। उसके शरीर से नहीं। मैं अब भी उसे केवल एक कवि के हृदय से देखता हूँ। विषयी के हृदय से नहीं। कवि अनेक युवतियों के लावण्य को बखानते हैं। वे पापी नहीं होते, वे उपासक होते हैं; आसक्त नहीं। मेरी भी यही हालत है।" एक विचित्र तेज से चमकती हुई आँखों से जजों की तुच्छता को प्रकट करते हुए रिचर्डसन ने अपना कथन यों जारी रक्खा—"हुज़ूर! मेरे मुक़द्दमे के निर्णय के लिए आपका

कोई और क़ानून काम में नहीं आ सकता। इसके लिए तो दैवी क़ानून की जरूरत है। उन जजों की आवश्यकता है जो मानव की उच्चतम मनोभावनाओं से अभिज्ञ हों। फिर साँसारिक क़ानून के अनुसार आप जो निर्णय देंगे मुझे वह मान्य है।"

पम्पिनी के बयान और रिचर्डसन के जवाब के बाद अपराधी को प्राण दण्ड की सज़ा न्यायोचित नहीं हो सकती थी किन्तु जज यह भी जानते थे कि इससे कम सज़ा मज़दूरों को सन्तुष्ट करने वाली नहीं होगी। वह यह भी समझते थे कि मज़दूरों का असन्तोष युद्ध में व्यत्यय लाने का कारण बन सकता है। अतः कुछ देर के सोच विचार के बाद उन्होंने युद्धकाल में अपने कर्तव्य की अवहेलना करते हुए बिना इत्तिला काम छोड़ कर चले जाने के अपराध में रिचर्डसन को प्राण दण्ड की सज़ा सुना ही दी।

× × × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल फ़ौजी तरीके पर प्राण दण्ड की तारीख नियत कर दी गई थी। प्रथा के अनुसार रिचर्डसन से पूछा गया कि उनकी अन्तिम अभिलाषा क्या है।

"इसके सिवाय कोई नहीं कि मेरी आँखों पर पट्टी न बांधी जाए और मुझ पर पहली गोली चलाने का अधिकार पम्पिनी को दिया जाए।" रिचर्डसन ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—"मैं उस पतंगे की तरह मरना चाहता हूँ जो कि उस ज्वाला का शिकार हो जाता है जिससे की वह प्रेम करता है।"

उसकी इच्छा पूर्ण की गई। इसलिए नहीं कि यह उसकी अभिलाषा थी अपितु इसलिए कि यह तरीका मज़दूरों को अधिक सन्तोष देगा। चौधरी द्वारा पम्पिनी को गोली चलाने के लिए उद्युक्त किया गया।

प्राण दण्ड का समय आ पहुँचा। रिचर्डसन को उसके हाथ बाँध कर एक दीवार के सम्मुख खड़ा कर दिया गया। बीस क़दम के फ़ासले से हाथ में एक पिस्तौल लिए पम्पिनी खड़ी थी। उसके दोनों बाजू किंचित् पीछे हट कर बन्दूकें ताने 'फ़ायरिंग स्क्वाड के जवान खड़े थे। कोर्ट मार्शल का यह एक अनूठा प्रकार होने के कारण सैकड़ों तमाशबीन भी जमा हो गए थे। रिचर्डसन

के चेहरे पर भय, उदासीनता या रंज के कोई चिह्न नहीं थे। पम्पिनी को अपने सम्मुख देखते ही उसका चेहरा आन्तरिक उद्वेग से प्रफुल्लित और उल्लसित था। मानो उसे बरसों से खोया हुआ अपना खजाना मिल गया हो।

अब तक पम्पिनी ने कप्तान को आँखें भर कर कभी देखा नहीं था किन्तु अब जब कि उसे रिचर्डसन को अपनी गोली का निशाना बनाना था और लेफ्टिनेएट का हुकुम हो गया था कि पम्पिनी तैयार हो जाओ, अब यह जरूरी था कि वह रिचर्डसन को पिस्तौल की जद सीध में लाने के लिए ऊपर से नीचे तक ठीक तौर पर निहार ले। इस प्रक्रिया में प्रथम वार पम्पिनी की आँखें रिचर्डसन की आँखों से मिलीं। चार आँखें होने का यह अनोखा मौक़ा था। जिसके लिए रिचर्डसन कई दिनों से उत्सुक थे। उन्होंने अपनी आँखों की वाणी द्वारा पम्पिनी से जो कहना था कह ही डाला। पम्पिनी लज्जित हुई। मानो रिचर्डसन दुत्कार रहे थे कि "जब तू मेरे पास में घने जंगल में थी, एकान्त में थी, तेरा कोई सहायक नहीं था ऐसे समय पर मैंने तेरे साथ बुरा व्यवहार नहीं किया। क्या इसी अपराध का मुझे दण्ड दिया जा रहा है। दे, अवश्य दे, जब मुझे वह सहवास नहीं मिल सकता जहाँ मैं आनन्द, सुख और शान्ति की आशा करता हूँ तो मेरे जीवित रहने में लाभ ही क्या है। 'मेरे हृदय में ज्योति उद्दीप्त न होनी चाहिए थी किन्तु किसी अनिरीक्षित क्षण में तेरे कारण बेमालूम तरीके पर वह सुलग गई। उसका बुझ जाना ही जरूरी है। मैं स्वतः उसके बुझाने में असमर्थ हूँ। परमेश्वर ने मेरी सहायता के लिए तुझे भेजा है। अपनी पिस्तौल की गोली के झकोरे से इसे बुझा।"

रिचर्डसन की छाती पम्पिनी की पिस्तौल से निकली हुई गोली के आलिंगन के लिए फूल रही थी।

"एक—दो—तीन" लेफ्टिनेएट कर्नल लिटहार्ट ने आज्ञा दी।

एक निर्जीव यन्त्र की भाँति पम्पिनी की उँगली ट्रिगर पर दब गई परन्तु गोली आकाश में उड़ गई। पिस्तौल पम्पिनी के हाथ से गिर गई अभी गोली की गूँज दर्शकों के कानों से खत्म नहीं हुई थी कि उन्होंने देखा पम्पिनी रिचर्डसन के चरणों में पड़ी बिलखती रो रही है।

"नाथ मुझे क्षमा करो" पम्पिनी के शब्द पास खड़े लोगों के हृदयों में विजली की तरह दौड़ गए।

लेफ्टिनेएट कर्नल लिटहार्ट ने फायरिंग स्क्वाड को सज्ज होने के लिए आज्ञा दी परन्तु उसी समय उन्होंने देखा कि पम्पिनी स्क्वाड की गोलियों को अपनी छाती पर झेलने के लिए रिचर्डसन के सम्मुख खड़ी है।

× × × ×

आज दोनों दो नन्हीं जानों के माँ बाप हैं।

हँसूँ या रोऊँ

राय छोटेलाल हमारे शहर में मुँसिफ थे। एक भले अधिकारी थे। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के कारण लोकप्रिय भी थे। गरीबों से उनका व्यवहार अच्छा रहता था। दान-धर्म भी पर्याप्त मात्रा में किया करते थे। थोड़ी सी बीमारी के बाद हृदय की गति बन्द होने से उनकी एकाएक मृत्यु हो गयी। उनकी श्मशान-यात्रा में हजारों की संख्या में जनता साथ थी। मैं भी सम्मिलित हो गया था। चिता सुलग चुकी, उसकी ज्वालायें ऊपर तक आकाश में लपक रही थीं। चिता की उष्णता दूर तक अनुभव की जा रही थी। उस गर्मी के कारण सभी लोग चिता से दूर रह कर अलग-अलग वृक्षों की छाया में ही टिन-शेड के नीचे, या किसी दीवार की आड़ में जहाँ कहीं धूप से बचाव हो सके, इसी की प्रतीक्षा में बैठे थे कि कपाल-क्रिया हो जाय तो वे अपने-अपने घर का रास्ता लें। मैं भी अपने कुछ मित्रों के साथ एक पेड़ की छाया में चुपचाप बैठा हुआ जमीन पर एक तिनके से लकीरें खींच रहा था। इसी बीच पास के सज्जन सम्भवतः मुझे पहचान कर मेरी तरफ़

आये और समीप आ कर उन्होंने अभिवादन किया। मैंने अपनी स्मरणशक्ति पर जहाँ तक हो सका दवाव डाला परन्तु पूरे प्रयत्न के उपरान्त भी पहचानने में असमर्थ ही रहा। यह सही है कि मैंने उन्हें नहीं पहचाना, तो भी अभिवादन करने पर शिष्टाचार का यह तरीका है कि औपचारिक तौर पर अभिवादन करने वाले से कुछ न कुछ वातचीत की जाय और खुशहाली के सम्बन्ध में उससे पूछ-ताछ की जाय। सदाचार के इस नियम के अनुसार मैंने प्रश्न फेंक दिया—"क्या भाई! ठीक तो हो, आनन्द-प्रसन्न हो!"

किसी अनभिज्ञ व्यक्ति से इससे अधिक कुछ पूछा भी नहीं जा सकता। उसने वहुत धीमे स्वर में उत्तर दिया—

"नहीं महाशय जी, आप तो जानते ही हैं कि अव धन्धा-वन्धा कुछ ठीक नहीं चल रहा है, किसी दूसरे कारोवार की खोज में हूँ।"

"भाई! वताओ तो सही कि ऐसी कौन सी कठिनाई तुम्हारे सामने आ पड़ी है, जिसके हल करने में तुम असमर्थता अनुभव कर रहे हो? संभव है कि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ।"

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस अपरिचित मित्र ने जो कुछ कहा उसको मैं जन्म-जन्मान्तर में भी भूल नहीं सकता। उसके उस उत्तर में मनुष्य का स्वार्थी स्वभाव अपनी नग्नावस्था में खुले तौर पर दृष्टिगोचर हो रहा था। उत्तर देते समय उसका चेहरा विकृत था ऐसा जान पड़ता था कि महीनों से वह किसी वीमारी में फँसा हुआ है। करुणारस के पूर्णावतार को अपने आप में धारण करते हुए वड़े ही कष्टपूर्ण हाव भाव के साथ दुःख भरे शब्दों में दोनों हाथों को मेरे सामने थोड़ा आगे करके और कुछ फैलाते हुए उसने कहा—

"महाशय जी क्या कहें! कुछ दिन पूर्व इन्फ्लुएन्जा की वीमारी वड़े जोरों पर थी। आप जानते हैं कि रोज लगभग चार-पांच सौ मुर्दे पड़ते थे।"

मैंने सोचा कि सम्भवतः इसी बीमारी में इसका युवा पुत्र, छोटा या वड़ा भाई, पिता या चाचा जो कि घर का कारोवार संभालने वाला था, जाता रहा होगा और इसी लिये यह व्यथित है। मैं इन विचारों में गुँथा हुआ था कि उसने अपना भाषण जारी रखा।

"इस घाट पर ३० या ४० अर्थियाँ आ ही जाती थीं। व्यापार अच्छा चल रहा था। तीन साढ़े तीन मन लकड़ी बिक जाती थी। अब क्या है? दिन भर मक्खियाँ मारता बैठता हूँ। मुश्किल से दो चार मुर्दे आते हैं। परिणाम यह है कि चार दस मन से ऊपर व्यापार नहीं होता। किधर तीन साढ़े तीन सौ मन! और किधर चार दस मन। आप ही हमारे हाल का अंदाजा लगा सकते हैं।"

इस स्वार्थी भावना को देख कर मैं दंग रह गया। श्मशान में लकड़ी की दूकान लगा कर बैठा हुआ यह लक्कड़हारा अपने भाइयों की मौत में अपना लाभ देख रहा है। उसके हृदय में वैराग्य की या परमार्थ की कोई भावना नहीं क्योंकि उसका कार्यस्थल श्मशान है। श्मशान में होने के कारण हँसना कठिन था, परन्तु उस लक्कड़हारे की स्वार्थी वृत्ति को देख कर मेरे मन में एक ही प्रश्न उठा "हँसूँ या रोऊँ?"

लक्कड़हारे के दाम चुका दिये गये थे, ब्राह्मणों की दक्षिणा भी चुका दी गई थी। सब व्यवसाय यथाविधि किये जा रहे थे। चिता निस्तेज हो रही थी। लोगों के चेहरों पर भी उदासी, क्लांति और म्लानता कम होती जा रही थी। श्मशान से हमारे लौटने का समय हो चुका था। सब के सब एक एक करके उठे और फाटक की तरफ रुक करके जमा होने लगे। कुछ बाहर जा चुके थे, कुछ अभी फाटक के अन्दर थे। स्वर्गीय राय छोटेलाल के सम्बन्धी मेरे पीछे थे। अभी हम लोग फाटक तक नहीं पहुँचे थे कि श्मशान के वे नौकर, जिन्होंने चिता की लकड़ियों को जमाया था और चिता को सुलगाया था हमारे सम्मुख आ कर और झुक-झुक कर सलाम करने लगे। स्पष्ट था कि वे कुछ चाहते हैं। उनका इस प्रकार से सलाम करना इस बात का द्योतक था कि उनकी कुछ अभिलाषा है। मैंने पूछा—

"भाई तुम को क्या कहना है?" अत्यन्त नम्र भाव से उन्होंने उत्तर दिया,

"कुछ नहीं हुजूर! हमारा इनाम भी मिल जाना चाहिए।"

मृत्यु जैसी दुःखद वार्ता के बाद श्मशान में भी इनाम मांगने वाले कोई व्यक्ति होंगे इसकी कभी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। न्यायालय में देखा

गया है कि चाहे कोई मुकदमा हारे या जीते अदालत के चपरासी का इनाम निश्चित रहता है। श्मशान पर काम करने वाले यह भी विचित्र कर्मचारी थे कि चतुराई से चिता रची जाने के बदले में मृतात्मा के संबन्धियों से इनाम की याचना कर रहे थे। उनकी इस ढिठाई को देख कर हममें से एक कह उठा—

"वेवकूफो! जरा शरम करो। क्या यह जगह इनाम माँगने की है?" उन मजदूरों ने कुछ उत्तर देने के स्थान पर अपने सलाम के वेग को बढ़ा दिया। मैंने भी देखा कि अधिक बात बढ़ाना निरर्थक है और लक्कड़हारे का उत्तर अभी मेरे कानों में गूँज ही रहा था मैंने सोचा—

"इनाम का मांगना चपरासी, मजदूर और प्यादों के लिये एक व्यवहार की बात है। यह ठहरे श्मशान के चपरासी। अब यह यदि इनाम मांगना चाहें तो श्मशान के बाहर कहां मांग सकते हैं और मृत्यु के अतिरिक्त दूसरी कौन सी घटना को अपनी मांग का लक्ष्य रख सकते हैं।"

केवल इस लिये कि उनसे पीछा छुड़ाया जाय मैंने अपने मुंशी से उन्हें एक रुपया देने का इशारा किया। मेरी अनुमति पाते ही मुंशी ने एक रुपये का नोट उन्हें दे दिया। किन्तु आश्चर्य की बात है कि रुपये का नोट पा कर भी वे लोग हमारे मार्ग से नहीं हटे। प्रत्युत कुछ और सामने आ कर उन्होंने हमारे मार्ग को रोक लिया तथा अधिक वेग के साथ और अधिक झुक-झुक कर वे हमें प्रणाम करने लगे। मैंने समझा कि इनाम के मिल जाने के कारण वे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं। मैंने सविनय निवेदन किया—

"कृतज्ञता की ऐसी कोई बात नहीं है। आप लोगों ने भी तो काम किया था, इसीलिये इनाम दे दिया गया है। अब कृपा करके आप लोग मार्ग छोड़ दीजिए। हमें बाहर जाने दीजिये।"

मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न था कि वहां इनाम के दिये जाने पर कृतज्ञता के प्रकट किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। वे कह रहे थे—

"क्या हुजूर! एक ही रुपया! भला ऐसा भी कभी हो सकता है!" राय छोटेलाल के संबन्धियों की तरफ इशारा करते हुये उनमें से एकने कहा—

"ऐसे धनी मानी बड़े लोगों के घरों में क्या रोज रोज मौत होती है।

महीनों में एकाध समय ऐसी अर्थी आती है जब कि हमें कुछ अधिक मिलने की आशा रहती है। ऐसे दिन भी यदि एक ही रुपया मिले तो हमारी जिन्दगी किस प्रकार चले। बस हुजूर ! दस रुपये का हुक्म हो जाना चाहिए।"

चिता रचने वालों को दस रुपये का नोट दे कर उनसे पीछा छुड़ाया और हम सब शनैः शनैः श्मशान के फाटक से बाहर आ गये। लोगों के चेहरों पर श्मशान वैराग्य के चिह्न मिटते से जा रहे थे। इसकी प्रतीति प्रारम्भ हो गयी थी कि श्मशान प्रतिदिन के कार्यों का कार्यक्षेत्र न होने से वहाँ का जीवन और विचार सब बनावटी थे। वास्तव में श्मशान भूमि के फाटक के बाहर संसार असार नहीं अपितु सारवान है। हर मनुष्य के लिये वहाँ कोई ध्येय है, उद्देश्य है और कर्तव्य है। सबके सब आपस में खुल कर बातें करने लग गये थे। किसी के मुख पर पहले सी उदासीनता न थी और न किसी के मस्तिष्क में यह विचार था कि सबको एक रोज यहीं आना है। कोई रुई का भाव पूछ रहा था तो कोई होटल का पता पूछ रहा था। कोई ट्रेन का समय मालूम कर रहा था तो कोई कचहरी का रास्ता, कोई सिनेमा घर के बारे में जांच कर रहा था। किसी को गायिका और अभिनायिका की चर्चा सूझ रही थी तो किसी को घुड़दौड़ के परिणाम की चिन्ता हो रही थी। सारांश यह कि हर व्यक्ति अपने विषय में मस्त था। जिनके पास सवारी थी वह अपनी सवारी में बैठ कर जा रहे थे और जिनके पास सवारी नहीं थी वे देख रहे थे कि किसकी सवारी में कितनी सीटें खाली हैं और कौन किस को बिठा लेने के लिए तैयार है। जिनको किसी की सवारी में स्थान नहीं मिला वह यह कहते भी शरमा नहीं रहे थे, "कम्बख्त समय देख कर भी नहीं मरा जो हमें दोपहर की तपती धूप में वापस होना पड़ रहा है।" इतने में ही मेरे एक नौजवान दोस्त मेरी तरफ लपके। उनके चेहरे पर कुछ लज्जा और कुछ आशा थी, कुछ संकोच और कुछ उमंग की लहर दिखाई दे रही थी। वे बड़ी जल्दी में थे। एक क्षण का भी विलम्ब उन्हें दूभर हो रहा था। मुझे उनकी इस जल्दी का कारण समझना कठिन हो रहा था। मैंने समझा कि मुझे जाते हुए देख कर वे जल्दी से मेरे साथ हो लेना चाहते हैं। किन्तु नहीं; उन्होंने

अपनी जेब से एक कागज निकाला और बगल में खड़ी हुई गाड़ी की ओर इशारा करते हुए गाड़ी में बैठे हुए चीफ जस्टिस की सेवा में उस कागज को समर्पित करने की प्रार्थना की। चीफ जस्टिस की मोटर स्टार्ट हो चुकी थी अतः उस कागज को पढ़ने का अवसर मेरे पास नहीं था। मैं अपने नौजवान दोस्त की उद्विग्नता से अत्यन्त प्रभावित था, स्पष्ट भी है कि जब वे प्रार्थना पत्र श्मशान भूमि तक लाये थे तो अवश्य ही उनका कार्य अत्यन्त महत्व पूर्ण रहा होगा। मैं भी दौड़ता हुआ, चीफ जस्टिस की मोटर का पहिया धर्ती पर फिरने से पूर्व ही उनके पास पहुँचा और अपने नौजवान दोस्त का प्रार्थना-पत्र उनके हस्तगत कर दिया। चीफ जस्टिस ने उस पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ा और फिर बड़े सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहा—

"मुझे अत्यन्त खेद है कि आपके मित्र बहुत ही देर कर के आये हैं।" इतना कहते हुए उन्होंने वह प्रार्थना पत्र मेरे हाथ में वापस दे दिया। मैंने भी उसको आदि से अन्त तक पढ़ा। बात यह थी कि मेरे मित्र एक नौजवान वकील थे। राय छोटेलाल की मृत्यु के कारण मुन्सफी का एक स्थान रिक्त हुआ था। मेरे मित्र ने चीफ जस्टिस साहब को इसी रिक्त स्थान पर स्वतः की नियुक्ति के लिये प्रार्थना पत्र दिया था। मैंने इसे पढ़ कर ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो चीफ जस्टिस ने अपने कथन की शृंखला को यों बढ़ाया—

"मैं मजबूर हूँ, मुझे खेद है, आपके मित्र बहुत देर करके आये हैं। राय छोटेलाल की अर्थी उठने से पूर्व ही जब मैं उनके मकान पर गया था तब ही मेरे पास तीन प्रार्थना पत्र आ चुके थे और उनमें से एक प्रार्थी को चुन कर मैंने उसकी नियुक्ति की आज्ञा भी दे दी है।" उन्होंने हँसते हुए अपना कथन यों समाप्त किया—"अपने मित्र से कहिए कि भविष्य में वे इतना विलम्ब न किया करें।"

मेरी और मेरे मित्र की आँखों के सामने इस अकल्पित निराशा के कारण अन्धेरा सा छा गया। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि अर्थी उठने से पूर्व भी रिक्त स्थान के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किये जा चुके होंगे मैंने दोनों हाथों से अपनी आँखें मलीं और उन्हें खोलने का प्रयत्न किया।

उस समय तक चीफ जस्टिस की गाड़ी मेरे सामने से जा चुकी थी; परन्तु उस नौजवान मित्र का वह चित्र अर्थपूर्ण दिखाई दे रहा था, प्रार्थी के चेहरे पर लज्जा थी क्योंकि वह सोच रहा था—

"हाय ! मेरा दुर्भाग्य कि मुझे श्मशान भूमि पर अपना प्रार्थना-पत्र देना पड़ रहा है।"

उस समय उसके चेहरे पर आशा थी क्योंकि उसे विश्वास था कि सब से पहला प्रार्थना-पत्र उसी का होगा। साथ ही उसके चेहरे पर उमंग की आभा थी क्योंकि वह समझ रहा था कि प्रार्थना-पत्र को पेश करने के लिए सौभाग्य से मुझ-सा व्यक्ति उसे प्राप्त हो गया था। मैंने एक बार अपने मित्र की धृष्टता पर विचार किया कि यह व्यक्ति श्मशान भूमि पर अपना प्रार्थना पत्र लाने का साहस कैसे कर सका। परन्तु मेरा विचार उसके प्रतिद्वन्दियों की चतुराई और समयसूचकता पर गया जिन्होंने अर्थी के उठाये जाने की प्रतीक्षा नहीं की। मैंने सोचा मनुष्य स्वार्थी है पर इतना नीच नहीं कि राय छोटेलाल की मृत्यु के पूर्व ही उनकी रुग्णावस्था में रिक्त होने वाले स्थान के लिए प्रार्थना-पत्र देने का साहस करे। यह सोचते सोचते मैं फिर से एक बार कह उठा :—

"हँसूँ या रोऊँ ?"

तहसीलदार

यह किस्सा आज से चालीस वर्ष पूर्व का है। उस समय के लोग निराले थे। गरीब और अमीरों के कपड़ों में, रहन-सहन में, खाने पीने में और बोल-चाल में बहुत अन्तर था; किन्तु एक दूसरे के लिए उन दिनों सहानुभूति रहा करती थी। शिक्षितों और अशिक्षितों में उस समय वही अन्तर था जो कि पहाड़ों की ऊँची चोटियों और नीचे की समतल भूमि में हो सकता है। अशिक्षित बहुत थे, शिक्षित बहुत कम थे, किन्तु शिक्षित अशिक्षितों की उपेक्षा नहीं किया करते थे। उन दिनों राज्याधिकारी और प्रजा में सेव्य-सेवक का सम्बन्ध था। अधिकारी स्वतः को स्वर्ग से उतरे हुए इन्द्र के प्रतिनिधि समझते थे और प्रजा भी उन्हें देवता मान कर पूजती थी। परन्तु कभी दोनों में ईर्ष्या, द्वेष या घृणा की भावना का आविर्भाव नहीं होता था। कारण उस समय अच्छे-बुरे; पाप-पुण्य, तथा कर्तव्याकर्तव्य की समयानुसार कुछ भावनाएँ थीं और लोग भी उसी के अनुसार आचरण करते थे। सच पूछा जाए तो भारतवर्ष में वह समय पुरानी और नई सभ्यताओं के लिए संध्या का समय था। रानी विक्टोरिया का

शासनकाल समाप्त हो चुका था। किंग जार्ज अभी सिंहासन पर आरूढ़ नहीं हुए थे। ये दिन वे थे जब कुछ वर्षों के लिए भारत के सम्राट् किंग एडवर्ड बने थे। नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हो रहा था और पुरानी सभ्यता उसके सम्मुख घुटने टेकती-सी नज़र आ रही थी। विलायत से पढ़ कर बहुत से बैरिस्टर, आई. सी. एस. और दूसरे विद्वान् नये-नये विचारों को प्रथम बार भारत में फैला रहे थे जिससे भारतीयों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन प्रारम्भ हो चुका था। इसका एक उदाहरण आज से चालीस वर्ष पूर्व मनमाड से हैदराबाद जाती हुई गाड़ी के एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे में उग्ररूप में दिखाई दे रहा था।

गाड़ी मिट्टूगुडा स्टेशन पर खड़ी थी। फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे में एक नवयुवक बैरिस्टर एक अँग्रेजी मासिक हाथ में लिए कभी पढ़ता था तो कभी उसी से पंखे का भी काम लेता था। मुख में एक लम्बी चुरुट थी जिसकी ठहर ठहर कर निकलती हुई धुएँ की धारा उसके आन्तरिक उतावलेपन का प्रदर्शन कर रही थी। वह बार-बार अपनी वासकट की जेब से घड़ी निकाल कर देखता और फिर घड़ी जेब में रख लेता था। आखिरकार वह अपने डिब्बे से बाहिर निकला और छड़ी का आसरा-सा लेता हुआ स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा। वहाँ गाड़ी का गार्ड भी बैठा हुआ था।

"क्या कारण है, गाड़ी पन्द्रह मिनट लेट है और आप उसे छोड़ने का विचार करते भी प्रतीत नहीं होते?" बैरिस्टर साहब ने गार्ड से पूछा।

गार्ड ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल स्टेशन-मास्टर की तरफ़ देख कर उसने इस भाव को प्रकट किया कि गाड़ी इनकी आज्ञा के बिना आगे नहीं बढ़ सकती। अलबत्ता स्टेशन-मास्टर ने, जो कि गाड़ी खड़ा करने का महत्व पूर्णतया जानता था, बैरिस्टर साहब को समझाने का प्रयत्न किया।

"अभी अभी सूचना प्राप्त हुई है कि मिट्टूगुडा के तहसीलदार हैदराबाद जाने वाले हैं, उनकी प्रतीक्षा है। उनके आने तक गाड़ी खड़ी रहेगी।"

"व्हॉट नॉन सेन्स!" बैरिस्टर साहब ने गरजते हुए कहा—"आप को चाहिए कि आप गाड़ी समय पर छोड़ दें। तहसीलदार तो क्या उससे किसी

बड़े अधिकारी के लिए भी ट्रेन लेट नहीं की जा सकती। आप नहीं समझते कि गाड़ी लेट होने से दूसरों को किस तरह तकलीफ़ होती है। हमें हैदराबाद जल्दी पहुँचना है। आप गाड़ी शीघ्र छोड़िये।"

उस समय के कर्मचारी समय के महत्व से अनभिज्ञ थे। वे अँग्रेजी पोशाक से घबराते थे, किन्तु तहसीलदार के लिबास से आतंकित होते थे। ना समझी, घबराहट और आतंक की विविध भावनाओं से विक्षुब्ध स्टेशन-मास्टर सिवाय इसके कुछ उत्तर न दे सका कि "अभी आते ही होंगे। यह लीजिये आ ही गये। उनके म्याने के धीवरों की आवाज़ आ रही है। कुछ ही देर में आ जायँगे। आप अपने डिब्बे में बैठ जाइये। अभी गाड़ी छुड़वा देता हूँ।"

यह वाद-विवाद चल ही रहा था कि छः धीवरों के कंधों पर लदा हुआ तहसीलदार का म्याना सीधा उस फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने पहुँच गया, जिस में से अभी अभी बैरिस्टर साहब उतरे थे। उनके पीछे कपड़ों से भरे हुए चार सन्दूक, मोटे मोटे तीन बिछौने, फलों से भरे दो टोकरे, एक तोशादान एक टूँटीदार लोटा, एक मुर्गियों की छाबड़ी और एक हुक्का भी था। यह सारा सामान अन्दर रखा ही जा रहा था कि बैरिस्टर साहब दौड़ते हुए अपने डिब्बे के समीप आ कर हमालों से कहने लगे—

"यह डिब्बा रिज़र्व है। इसमें आप लोग दूसरों का सामान नहीं रख सकते।"

"हमें कुछ मालूम नहीं, सरकार की आज्ञा है। आपकी कोई तकरार हो तो उनसे कहो।" हमालों ने उत्तर देते हुए अपना काम जारी रखा।

"यह क्या बात है!" बैरिस्टर साहब ने तहसीलदार से कहा—"आप देखते हैं कि डिब्बे पर रिज़र्व का लेबल है और फिर भी आप अपना सामान इसमें रखवा रहे हैं। यह बात ठीक नहीं है। आप अभी से दूसरी तरफ़ बैठ जाइये, अन्यथा आप को अगले स्टेशन पर उतरना पड़ेगा।"

"बड़ा आया उतारने वाला।" तहसीलदार ने कहा—"कहता है डिब्बा रिज़र्व है, होगा किसी ऐरे-गैरे के मुकाबले में, क्या तहसीलदार के मुकाबले में

भी डिब्बा रिज़र्व करने का किसी को अधिकार है ?" फिर हमालों को सम्बोधित करते हुए उसने कहा - "चलो जल्दी करो, रखो सब सामान, गाड़ी को देर हो रही है ।"

"मैं कहता हूँ आप को इस डिब्बे में बैठने का अधिकार नहीं है ।" बैरिस्टर साहब ने बड़े आवेशपूर्ण शब्दों में जताया ।

"कौन कहता है कि हमें बैठने का अधिकार नहीं है । जैसे कि हमने टिकट ही नहीं लिया हो ।" यह कहते हुए तहसीलदार ने अपनी शेरवानी की जेब से टिकट निकाला और उसको बताते हुए अपना कथन जारी रखा—"यह देखो, हमारे पास भी टिकट है और हमें भी गाड़ी में बैठने का उतना हीं अधिकार है जितना तुम्हें है ।"

टिकट देखना ही था कि बैरिस्टर साहब का खून खौल उठा । यह टिकट सैकण्ड क्लास का था और तहसीलदार बैठ रहे थे फर्स्ट क्लास में ।

धीरे धीरे सारा सामान भरा जा चुका था । तहसीलदार डिब्बे में चढ़ चुके थे । उनके दो चपरासी दोनों दरवाज़ों पर खड़े थे । बैरिस्टर साहब ने उनसे तकरार करना बेसमझी की बात जान कर दूर खड़े हुए स्टेशन-मास्टर और गार्ड से ही शिकायत करना उचित समझा । बैरिस्टर ने उन दोनों की तरफ़ रुख किया । दोनों ताड़ गये कि बैरिस्टर साहब उनकी तरफ़ क्यों आ रहे हैं । उनको ज्ञात था कि तहसीलदार का टिकट दूसरे दर्जे का है । साथ ही वे यह भी जानते थे कि न तो वे बैरिस्टर साहब की माँग पूरी कर सकते हैं और न तहसीलदार को, जिसके पास दूसरे दर्जे का टिकट है, पहले दर्जे से उतार सकते हैं । अपनी निर्बलता को अनुभव करते हुए दोनों एक दूसरे से अलग हो गये । गार्ड ने गाड़ी के पिछले डिब्बे की तरफ़ रुख किया और स्टेशन मास्टर दौड़ता हुआ इंजन की तरफ़ चल दिया । जाते जाते बैरिस्टर साहब की तरफ़ मुँह फिराते हुए कहता गया—

"डिब्बे में चढ़िये, गाड़ी चल रही है ।"

बैरिस्टर साहब विचार ही कर रहे थे कि किधर जाऊँ—गार्ड की तरफ़ या स्टेशन मास्टर की तरफ़—कि इतने में गार्ड ने सीटी बजा दी और मास्टर

ने हरी भरडी फहरा दी । इंजिन का भोंगा भी जोर से बज उठा । वैरिस्टर साहब के लिए सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहा कि वे शीघ्रता से डिव्वे में घुस जाएँ ।

डिव्वे में चढ़ने के बाद वैरिस्टर साहब के सम्मुख एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हो गया । एक सीट पर तहसीलदार खुद बैठे हुए थे और उनके दोनों ओर दो बड़े-बड़े विछौने पड़े हुए थे । दूसरी सीट पर चारों सन्दूक थे और उन पर तीसरा विछौना था । वैरिस्टर साहब के बैठने के लिए कोई स्थान खाली नहीं था । डिव्वे के बीच तहसीलदार के दोनों नौकर बचे हुए समान को इधर से उधर और उधर से इधर करते हुए गड़बड़ मचा रहे थे । वैरिस्टर साहब ने देखा कि अब तहसीलदार साहब से डाँट डपट करने का मौक़ा नहीं है । इसलिए वे एक तरफ डिव्वे की दीवार से पीठ लगाये चुरुट का धुआँ खींचते हुए चुपचाप एक योगी की दृष्टि से इस माया जाल को देख रहे थे और सोच रहे थे कि इससे अलिप्त रहने में ही सुख है, इस में फँसने में दुःख है । वैरिस्टर साहब की इस अवस्था को देख कर तहसीलदार को तरस आया । उसने बड़े ही सौजन्य से कहा—

"मियाँ, खड़े क्यों हो; वैठ जाओ न !" जैसे यह तो डिव्वे का मालिक है और वैरिस्टर साहब पर कृपा दृष्टि कर रहा है ।

इतने में तहसीलदार ने देखा कि दूसरी सीट तो सामान से भरी पड़ी है और वैरिस्टर साहब के बैठने के लिए कोई स्थान ही नहीं है । वे तुरन्त अपनी सीट से उठ खड़े हुए और कहने लगे—

"मियाँ ! लो, यहाँ बैठो । मैं दूसरी तरफ बैठता हूँ ।" इतना कहते हुए उन्होंने अपने नौकरों से बाजू की सीट खाली करने को कहा और वैरिस्टर साहब को दोनों कन्धों से पकड़ कर अपनी सीट पर दबा मारा । यह बात उन दिनों के विनयानुसार थी । सीट खाली हो जाने पर दूसरी तरफ़ वे खुद बैठ गये ।

× × × ×

गाड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रही थी । वैरिस्टर साहब का मुख खिड़की

के बाहर था। तहसीलदार सीट के बीचोंबीच दोनों हाथ सीट की पीठ पर पसारे बैठे हुए थे। अपने साथी यात्री की तरफ़ देखते हुए वह सोच रहे थे कि इससे क्यों कर बातचीत प्रारंभ की जाए।

"मियाँ! कहाँ से आ रहे हो?" तहसीलदार ने पूछा।

"लखनऊ से।" खिड़की से गर्दन घुमा कर बैरिस्टर ने उत्तर दिया और अपना मुख खिड़की के बाहर कर लिया।

"क्या करते हो मियाँ लखनऊ में?" तहसीलदार ने फिर पूछा।

इस समय बैरिस्टर साहब ने अपनी गर्दन नहीं मोड़ी। वे तो पहले प्रश्न पर ही तङ्ग आ गये थे और ऐसे गँवार से, जो बिना पहचान के बातचीत जारी रखना चाहता हो, बात करना नहीं चाहते थे।

"वह तो बड़ा नगर है। ऐतिहासिक नगर है। नवाबों और ज़मींदारों का नगर है। आपकी भी ज़मींदारी होगी, तभी तो सैर के लिए इधर निकले हो?" तहसीलदार ने अपनी बौछार जारी रखी।

न जाने बैरिस्टर साहब को ज़मींदार का उपपद क्यों अखरा, वे उसको सुन कर चुप न रह सके और कह उठे —

"नहीं।"

तहसीलदार ने देखा किला ढसक रहा है। दो-चार और हल्ले हुए कि इस सूट-बूट वाले व्यक्ति का मुँह निश्चय ही उनकी तरफ फिर जायेगा। वे पुराने ज़माने के व्यक्ति थे और रेल के डिब्बे में, जब कि उनके साथ कोई दूसरा व्यक्ति बैठा हो, चुपचाप बैठ नहीं सकते थे।

"डाग्दर हो?" तहसीलदार ने पूछा।

"नहीं।"

"सरकारी ओहदेदार हो?"

"नहीं।"

"फिर क्या कोई व्यापार-धंधा करते हो या किसी कम्पनी के एजण्ट हो?"

"नहीं।" एक ही शब्द में बैरिस्टर साहब ने अपना उत्तर दोहराया।

"अजी, बोलो तो सही; दुनिया में आ कर फिर क्या करते हो? कहीं

कालेज में परफेसर वरफेसर तो नहीं हो, जो छुट्टियों में हैदराबाद की सैर के लिए निकले हो ?

"नहीं ।" फिर वही एक शब्द में उत्तर ।

वैरिस्टर साहब सोच रहे थे कि इस बूढ़े को मैं कौन हूँ, क्या करता हूँ, कहाँ रहता हूँ, इससे क्या मतलब । मैं, मैं हूँ । और वह, वह है । भला आदमी चुप क्यों नहीं बैठता, समझ नहीं पाता । परन्तु तहसीलदार थे पुरानी पीढ़ी के । उसकी पीढ़ी के दो व्यक्ति जहाँ बैठे वहीं उनमें आत्मीयता उत्पन्न हो जाती थी । दस ही मिनट में दोनों एक दूसरे के बाल-बच्चों, चचा-भतीजों और बहिन-भाइयों से परिचित हो जाते थे । कभी कभी तो चार-पाँच पीढ़ी ऊपर निकल गये तो उनके पुराने सम्बन्धी होने का भी पता लग जाता था । फिर यदि किसी के घर नौजवान छोकरा हो और दूसरे के घर विवाह के योग्य पुत्री हो तो यों ही एक ही बैठक में मंगनी भी हो जाती थी । परन्तु आज तहसीलदार को बड़े ही खूसट से पाला पड़ा था, जो कि 'नहीं' के सिवाय कोई जवाब ही नहीं जानता था । तब तो तहसीलदार ने एक दूसरा पैंतरा सोचा । दिन के बारह बज चुके थे । भोजन का समय हो चुका था । तहसीलदार ने डिब्बे के फर्श पर दो सन्दूकों को जमा कर उस पर दस्तरखान बिछाया और तोषेदान में से एक-एक तश्तरी दस्तरखान पर जमा कर कहा—

"अजी वकील साहब, आइए ! बिस्मिल्लाह ! खाना हाजिर है, नोश फरमाइये ।"

"वकील साहब !" यह सम्बोधन सुनते ही वैरिस्टर चौंक कर उठ खड़े हुए और बोले—

"आपने कैसे जाना मैं वकील हूँ ।"

"अजी मियाँ ! जो जमींदार नहीं, परफेसर नहीं, ओहदेदार नहीं, डाग्दर नहीं और फिर भी सूट-बूट पहन सकता है तो वह वकील नहीं तो क्या हो सकता है । 'जिसका कोई धंधा नहीं उसका धंधा वकीली' हमारे यहाँ की कहावत है ।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े ।

"हाँ, तो बैठिये; शुरू कीजिए।" तहसीलदार ने आग्रह किया।

दस्तरखान पर दो बड़ी तश्तरियों में पुलाव व कबाव के ढेर थे। दोनों के बीच एक तश्तरी में रोटियाँ थीं। यह तश्तरी भिन्न-भिन्न सालनों की चार तश्तरियों से घिरी हुई थी। सालनों की तश्तरियों के बीच-बीच कटोरियाँ थीं। दस्तरखान के दो अडकोनों पर बादाम और पिस्ते की मिठाई और दूसरे दो कोनों पर खीर से भरे दो प्याले थे। कबाव, पुलाव और सालनों की महक, चटनियों की चहक, वर्कदार मिठाइयों की चमक, घी से चुपड़ी रोटियों की दमक और खीर से भरे कटोरों की लपक ने बैरिस्टर साहब का मन लुभा लिया।

"अच्छा, आपका इतना आग्रह है, तो दो निवाले आपके साथ खा ही लेता हूँ।" बैरिस्टर साहब ने कहा और दस्तरखान की तरफ मुँह करके बैठ गये।

"हाँ! हाँ! मियाँ! जरूर खाओ। इससे बढ़ कर किसी पर क्या उपकार हो सकता है कि उसको मेज़मानदारी का मान दिया जाय। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।" आज से चालीस वर्ष पूर्व बुढ़ापा पाए हुए तहसीलदार ने विनीत भाव से बैरिस्टर से कहा—"लो, यह पुलाव लो; बड़ा मजेदार है। यह सालन, इसके साथ जो भी आपको पसन्द हो; मगर मियाँ! हाँ! अभी से कहे देता हूँ, मिठाई के लिए पेट में स्थान रखना। घर की बनी हुई है। तुम्हारी चाची के हाथ की। और खीर! बस पूछो मत, उसके लिये भी पेट में गुंजायश रख ही लेना।"

दोनों ने एक एक पदार्थ खाना प्रारम्भ किया।

"हाँ! तो आप लखनऊ में वकीली करते हैं! हमने भी वकीली की परीक्षा पास की थी। परन्तु वह उर्दू में थी! अब तो बहुत से वकील बम्बई व कलकत्ता जा कर अँग्रेजी में परीक्षा पास करते हैं। आपने अपनी परीक्षा कहाँ पास की है?" खाते-खाते तहसीलदार ने पूछा।

"मैंने यह परीक्षा लन्दन में पास की है।" बैरिस्टर ने उत्तर दिया।

"ओह, ओ! तब तो आप बैरिस्टर हैं। बहुत पैसा खर्च किया होगा। हमारे यहाँ भी दो चार बैरिस्टर हैं। मगर खर्च के माफ़क कमाते नहीं।

आपकी तो वैरिस्टरी अच्छी चल रही होगी।"

"चलती है, गिरते पड़ते चार पाँच सौ महीना कमा लेता हूँ।"

"आप से तो हमारे यहाँ के तहसीलदार अच्छे रहे, जिनकी आमदनी एक हजार महीना से कम कभी होती ही नहीं। ईच-बीच कभी कभी साल में दो चार बार चार-चार पाँच-पाँच हजार हाथ लग ही जाते हैं।" तहसीलदार ने उत्तर दिया।

ऐसा क्यों? आप के यहाँ तहसीलदारों का कोई निश्चित वेतन नहीं है?" फिर वैरिस्टर साहब ने पूछा।

"अरे मियाँ! क्या कहते हो! वेतन तो भोजन को बस नहीं होता। फिर कपड़े हैं, बच्चों की पढ़ाई है, नौकरों की तनख्वाह है, शादी-ब्याह है, घोड़ा-गाड़ी है, यह सारा खर्च तो ऊपर से निकालना पड़ता है।" उस ज़माने की साफदिली के साथ तहसीलदार ने अपना सारा हाल खोल दिया। "अच्छा, यह तो कहो हैदराबाद कैसे तशरीफ लाये हो?"

इस प्रश्न ने वैरिस्टर साहब को थोड़ा-सा चक्कर में डाल दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे सही बताने में हिचकिचाते थे और झूठ बोलना नहीं चाहते थे। थोड़ी देर विचार करने के बाद उन्होंने कहा—

"कुछ नहीं, नौकरी की तलाश में आया हूँ। यदि कोई नौकरी मिल गई तो यहीं रह जाऊँगा।"

"नौकरी की तलाश में बड़ी दूर आये मियाँ! कोई पहचानत? किसी की सिफारिश? कहीं का वसीला? कुछ लाये हो?"

"नहीं, मेरी यहाँ न तो किसी से पहचानत है और न किसी की सिफारिश ही लाया हूँ। मुझे किसी का वसीला भी नहीं है।" वैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

तो फिर वैरिस्टरी के भरें पर चले आ रहे हो? यदि वैरिस्टरी पर ही नौकरी मिलनी होती तो वहीं लखनऊ में न मिल जाती। यहाँ तक आने की क्या जरूरत थी?" थोड़ी देर ठहर कर पानी का एक गिलास पीने के बाद तहसीलदार ने अपना कथन जारी रखा। "चलो अच्छा ही हुआ, आपकी

मेरे साथ मुलाक़ात हो गई। बोलो तहसीलदारी करोगे ?"

"कर लूँगा यदि वेतन प्रर्याप्त हो। यहाँ तहसीलदार को क्या मिलता है ? हमारी तरफ ढाई सौ रुपये मासिक वेतन है।"

"वेतन ! वेतन ! वेतन ! फिर वही बात। अरे, वेतन में क्या धरा है।" स्वतः की तरफ इशारा करते हुए उन्होंने कहा—"तहसीलदार को देखो और फिर सोचो तहसीलदार होना है या नहीं। इसके लिये उसका खाना देखो, उसका सामान देखो, जरा विचार करो उस म्याने का जिसमें मैं आया था, जरा सोचो उन नौकरों की संख्या को जो मेरे साथ थे, जरा दृष्टिपात करो उस भीड़ पर जो मुझे छोड़ने आई थी, जरा याद करो उस बात को जब मैं तुम्हारे डिब्बे में बावजूद रिज़र्व होने के चढ़ पड़ा, तो न तो गार्ड की और न स्टेशन मास्टर की ही हिम्मत हुई कि वह तहसीलदार को उतार सके। यह होती है तहसीलदार की शान, यह होता है तहसीलदार का मान। बोलो, तहसीलदारी करोगे ?"

"फिर भी मालूम तो हो कि यहाँ तहसीलदार का क्या वेतन है ?" बैरिस्टर साहब ने पूछा।

फिर वही एक बात, वेतन ! वेतन आपके यहाँ से सौ रुपये कम अर्थात् डेढ़ सौ मासिक मिलता है।"

"डेढ़ सौ रुपये में तो हमारी गुज़र न होगी।" बैरिस्टर साहब गुन-गुनाये।

"फिर वही बात। हजारों रुपये खर्च किये मगर नासमझ के नासमझ ही रहे। तुम्हारी ही बात नहीं मियाँ, विलायत से पढ़ कर आनेवालों की सब की यही दशा होती है। अरे भाई ! तहसीलदारी तनख्वाह के लिये नहीं, तोफे के लिए की जाती है। बोलो, करोगे तहसीलदारी।"

"समझो, करेंगे। परन्तु यहाँ पराये मुल्क में हमें तहसीलदारी कौन देने लगा ?" बैरिस्टर साहब ने मुस्करा कर कहा।

"इसकी चिन्ता तुम मत करो, तुमने हमारे साथ आज भोजन करके हम पर असीम कृपा की है। इसके बदले तुम्हारे लिये नौकरी की चिन्ता हम करेंगे।" तहसीलदार ने बड़े ही सन्तोष, उत्साह और आत्मविश्वास के साथ

कहा। ऐसा प्रतीत होता था कि कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित यह व्यक्ति अपने साथी की भलाई का कोई मार्ग सोच रहा है। "हमारे मामा यहाँ के सदरुलमहाम माल (भू-विभाग के मंत्री) हैं। हम तुम्हारे लिये उनसे कह देंगे और काम बन जायेगा। सही बात तो यह है कि उन्हें तुम्हारे जैसे योग्य बैरिस्टर तहसीलदारी के लिये कहाँ से मिलने लगे?"

बातें करते करते दोनों का भोजन समाप्त हो चुका था। दस्तरखान समेटा गया। उसका स्थान पानदान ने ले लिया। उधर चुन्नू ने हुक्का भी सुलगा दिया था। बैरिस्टर साहेब चुरुट पीना चाहते थे। यह देख कर तहसीलदार ने कहा—

"अरे मियाँ, छोड़ो इस मनहूस चुरुट को। न जाने तुम विलायत से वापस आये लोगों को सूखी तम्बाकू में क्या मज़ा आता है।" हुक्के की नली को सामने करते हुए तहसीलदार बोले—"यह लो तुम्हारे यहाँ की लखनवी गुड़ाकू है। एक कश लो, तो हजार चुरुट याद आ जायँ।"

बैरिस्टर साहब ने नली हाथ में ली। दो चार कश लिये। फिर नली तहसीलदार को वापिस दे दी। इस बीच तहसीलदार ने दो पान के बीड़े लगा लिये थे। एक उन्होंने बैरिस्टर साहब को पेश किया और दूसरा अपने मुख के हवाले किया। फिर डिब्बे की दीवार की तरफ सीट की पीठ से अपनी पीठ जमा कर और पैरों को सीट की पूरी लम्बाई में फैला कर आधे बैठे और आधे लेटे तहसीलदार चार-पाँच मिनट तक हुक्के के गहरे कश लगाते रहे।

× × × ×

भोजन करके, पाँच मिनट हुक्का पीने के उपरान्त बेहोशी, उन्माद, उमंग और जीवन, इन सब चेतनाओं का मिश्रण उनके चेहरे पर दिखाई दे रहा था। इन सब चेतनाओं से अभिभूत उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

"अच्छा हुआ, तुमने तहसीलदारी करना स्वीकार कर लिया। नहीं तो तुम्हारे जैसे नई रोशनी के लोग वेतन की कमी के कारण अस्वीकृत कर देते हैं।"

"हमने तो स्वीकार कर लिया है।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"हाँ, जरूर करना बेटा ! तहसीलदारी एक जादू है। चलाना आना चाहिये, फिर सदरुलमहामी (मंत्रीपद) भी इसके सम्मुख भ्रंक मारती है।"

"ठीक है, आपके हाथ के नीचे सब जादू सीख लेंगे।" बैरिस्टर साहब ने अर्थ-पूर्ण उद्‌गार निकाले।

"सच कहते हो, बेटा ! सच कहते हो ! होशियार हो। शनैः शनैः सब सीख लोगे। मगर मियाँ, हमने तो तुम्हारा नाम ही नहीं पूछा, क्या नाम है, कहाँ ठहरोगे ?"

"मेरा नाम इब्राहीमखाँ है। ठहरूँगा किसी सराय में। आप अपना पता दे दें तो वहीं आ कर मिलूँगा।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"बैरिस्टर इब्राहीमखाँ। ठीक है, याद रहेगा। मुझ गुलाम को नज़ीरअली कहते हैं। मेरा ग़रीबखाना मच्छीगली में है। कोई भी बता देगा।" तहसीलदार ने कहा।

× × × ×

हैदराबाद का स्टेशन समीप आ रहा था और गाड़ी का वेग धीमा पड़ रहा था। प्लेटफार्म पर बहुत बड़ी भीड़ देख कर तहसीलदार ने बैरिस्टर साहब से कहा—

"देखा ! यहाँ पर भी मेरे स्वागत के लिए कितने लोग जमा हैं।"

तहसीलदार ने खुदा को दुआएँ दीं कि इब्राहीमखाँ के दिल में उसके लिये इज्जत बनी रहेगी। गाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई। सारा स्टेशन पताकाओं से सजा हुआ था। दूर बैण्ड भी बज रहा था। आश्चर्य की बात यह थी कि भीड़ में तहसीलदार के मामा भू-विभाग के मंत्री भी थे। वे लपक कर तहसीलदार के समीप आये और पूछा—

"अबे, नज़ीर ! गाड़ी में इब्राहीमखाँ हैं ?"

"यही तो हैं।" इशारे से बताते हुए तहसीलदार ने मामा को उत्तर दिया।

भू-विभाग के मंत्री ने चाँदी की थाली में से ज़री का एक बड़ा हार इब्राहीमखाँ के गले में डाला। "इब्राहीमखाँ ज़िन्दाबाद" के नारों से सारा

स्टेशन गूँज उठा। बैण्ड ने "गॉड सेव दि किंग" की धुन प्रारम्भ की। बैरिस्टर साहब एक हाथ में हैट ले कर पुतले की नाईं खड़े हो गये। कुछ देर के लिए चारों तरफ शान्ति थी। अवसर पा कर तहसीलदार ने एक परिचित सज्जन से धीमी आवाज़ में पूछा—

"यह क्या माज़रा है?"

"वाह! तुम साथ आ रहे हो और तुम्हें मालूम नहीं कि इब्राहीमखाँ साहब नये मदारुलमहाम (प्रधानमंत्री) नियुक्त हो कर आये हैं।"

दूसरा कोई होता तो सम्भव है बेहोश हो कर वहीं गिर जाता, मगर तहसीलदार सधा हुआ था। एक लम्बी साँस ले कर वह डिब्बे में वापिस चला गया।

बैण्ड की धुन समाप्त होने पर भू-विभाग के मन्त्री ने जब अपने भानजे को डिब्बे में देखना चाहा, तो उन्होंने देखा कि प्लेटफार्म के दूसरी तरफ रेलवे लाइन की पाँच पंक्तियों को पार करके उनका भानजा अहाते की तार को फलांग रहा है और पुलिस के दो जवान उसे बिला टिकट सैर करने की शंका में पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

परिवर्त्तन

वनमाला दुःखी नहीं थी तो उसे सुखी भी नहीं कहा जा सकता था। यद्यपि उसका पति उससे प्रेम करता था किन्तु विवाह के पहले वनमाला ने कल्पना का जो संसार बसाया था वह साकार नहीं हो सका। घर में किसी चीज की कमी नहीं थी। उसकी इच्छा मात्र से कोई भी चीज तत्काल घर में आ सकती थी। यदि वह अनजाने भी कह देती कि क्लब में मनोहर की पत्नी सुन्दर साड़ी पहन कर आई थी तो उसका पति दूसरे दिन सारा बाजार छान कर वैसी ही साड़ी खरीद लाता था। एक दिन पति-पत्नी सिनेमा देखने गये। खेल में अभिनय करने वाली तारिका के कर्णफूल वनमाला के मन को भा गये। उसने पति से कहा—"सुनार ने नग जड़ने में कमाल ही कर दिया है। मालूम होता है गुलाब की पँखड़ियाँ हैं।"

वनमाला का पति नन्दकिशोर दूसरे दिन बम्बई चला गया। नन्दकिशोर के गाँव में वैसे कर्णफूल बन नहीं सकते थे। बम्बई में उसने उस सिनेमा तारिका का पता चलाया। तारिका से सुनार का पता पूछा। तीसरे दिन जब

नन्दकिशोर अपने गाँव पहुँचा तो कर्णफूल उसके साथ थे। जब सन्ध्या समय चाय पीते हुए नन्दकिशोर ने वनमाला के कानों में कर्णफूल पहनाये तो वनमाला चकित रह गई। उसने कहा—"अच्छा तो यह बात है! इसीलिए आप बम्बई गये थे? किन्तु मैंने तो आपसे इनके लिए कहा नहीं था।"

"तुमने परसों खेल देखते समय उस तारिका के कर्णफूल पसन्द किये थे, इसीलिए मैं ले आया।"

"मैंने उन्हें कब पसन्द किया था जी? मैंने यों ही तारीफ़ कर दी थी। आपने न जाने क्या समझ लिया। पैसा भी गया और कष्ट भी उठाना पड़ा।"

"वनमाला, तुमने फिर पैसे की बात चलाई। पैसा तो मेरे हाथ का मैल है। उसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी चाहिए। यह पैसा तुम पर खर्च न होगा तो किस पर होगा?"

यह सुनते ही वनमाला का चेहरा लज्जा के मारे लाल हो गया। बोली—

"क्या मैं इनके बिना आपको सुन्दर नहीं लगती।"

वनमाला अपने पति को प्रसन्न देखना चाहती थी। किन्तु न जाने क्यों उसका सिर एकाएक भन्ना गया जैसे बिजली के तार के छूने से भन्नाता है। वनमाला ने उन कर्णफूलों से सुशोभित हो कर मुग्ध हिरणी की आँखों से नन्दकिशोर को ताका। नन्दकिशोर ने चाय के प्याले से एक घूँट चाय पी थी कि प्याला नीचे रख दिया। कम्पित आवाज में उसने कहा—

"चाय है कि त्रिफले का काढ़ा? एक तो बर्फ की तरह ठण्डी उस पर कुनैन जैसी कड़वी। समझ में नहीं आता तुम्हें कब चाय बनानी आएगी। लाओ जरा शक्कर का कप तो इधर रखो।"

नन्दकिशोर ने दो चम्मच शक्कर डाल कर चाय शरबत में बदली और गटगट पी गया। चाय काफी गरम थी, किन्तु वह इस तरह पी रहा था जैसे ठण्डा पानी पी रहा हो।

× × × ×

विवाह हुए एक वर्ष से अधिक हुआ। वनमाला को दुःख इसी बात का

था कि उसके पति ने आज तक उसकी बनाई हुई किसी चीज की सराहना नहीं की थी। वह तरह तरह के पकवान बनाती थी। नन्दकिशोर सब चट कर जाता किन्तु खाते समय अजब शक्ल बना कर कभी नमक अधिक होने की और कभी कम होने की शिकायत करता था। एक दिन भी उसने नहीं कहा कि आज भोजन अच्छा बना है। वनमाला अपने बनाये भोजन की प्रशंसा सुनने के लिए लालायित रहती थी किन्तु बहुत दिन बीतने पर भी उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई।

केवल भोजन की ही यह बात नहीं थी। दूसरी चीजों का भी यही हाल था। वनमाला स्नान का पानी रखते समय तीन तीन बार परीक्षा करती थी कि पानी कहीं अधिक ठण्डा या गरम तो नहीं है, किन्तु नन्दकिशोर था कि कभी पानी को ठण्डा बताता और कभी गरम। एक दिन वनमाला ने दो बाल्टियों में गरम और ठण्डा पानी अलग-अलग रख दिया। उसने सोचा यही ठीक होगा किन्तु जिसके दिन खराब हों, उसकी हर बात उल्टी होती है। दो बाल्टियों को एक साथ देख कर पति ने कुड़कुड़ाते हुए कहा—"मेरे लिए अब इसके सिवाय कोई काम ही नहीं रह गया है कि मैं गरम पानी को ठण्डा करूँ और ठण्डे को गरम। घर में भी मैं ही काम करूँ और कचहरी में भी मरूँ। भगवान जाने पानी ठीक करने में कितना समय लगेगा।"

वनमाला जब अपने हाथों लोहा करके कपड़े देती तो नन्दकिशोर या तो उन्हें मैले बताता या फिर कहता इनसे बदबू आ रही है। वनमाला जो कपड़े देती थी उन्हें दूर फेंक कर दूसरे कपड़े पहन लेता।

जब नन्दकिशोर कहीं बाहर की तैयारी करता और वनमाला पीछे रह जाती तो वह जोर से पुकारता—कितनी देर करोगी। और यदि पहले से तैयार हो कर वह दरवाजे पर आ जाती तो पति चिल्लाता—मुझे भी आने दोगी या नहीं ? मैं कोई मशीन थोड़े ही हूँ कि बटन दबाते ही चलने लगूँ।

इतना सब कुछ होते हुए भी नन्दकिशोर के चेहरे पर कभी क्रोध नहीं दिखाई दिया। वह खरी-खोटी सुना देता था किन्तु यह सब उनके स्वभाव में दाखिल था। संभवतः इस तरह कुढ़ने या कोसने का वह पति का स्वाभाविक

अधिकार समझता था। जब बकने-झखने के बाद वह वनमाला को दुःखी देखता तो उसे खुश करने के लिए तरह तरह की साड़ियाँ और तरह तरह के आभूषण ले कर देता। किन्तु वनमाला इन चीजों की भूखी नहीं थी। उसे इन चीजों में नन्दकिशोर का हृदय नहीं उसकी अमीरी का उन्माद दिखाई देता था। वनमाला पति के हृदय की भूखी थी। वह अपने पति को प्रसन्न देखना चाहती थी। प्रसन्न पति से अपने किसी प्रयत्न की प्रशंसा चाहती थी। बस यही उसे प्राप्त नहीं था। यही कारण था कि इतना सब पा कर भी वनमाला खुश नहीं थी।

× × × ×

एक दिन अच्छे अच्छे पकवान बना कर वनमाला पतिदेव की राह देख रही थी। नन्दकिशोर उस दिन, संभवतः जान बूझ कर ही, देर से घर आया। वह भोजन करने लगा। अभी आधा भोजन हुआ भी नहीं था कि नन्दकिशोर झल्ला कर बोला—"यह भोजन है या पनसारी की दूकान। हर चीज में मसाला ही मसाला। मालूम होता है पेट खराब करने की बात मन में ठान ली है।"

इतना कह कर वह उठा, खड़ा हुआ और हाथ धोते धोते बोला—"आज लक्ष्मीनारायण के घर जाना पड़ा। भोजन का समय था। उन्होंने भोजन के लिए आग्रह किया। कैसी स्वादिष्ट तरकारी बनी थी। याद आते ही मुँह में पानी आता है। सोचा था यहाँ न खाने से तुम नाराज हो जाओगी इसीलिए आधे पेट चला आया, लेकिन पछता रहा हूँ वहाँ ही अच्छी तरह क्यों नहीं खाया।"

वनमाला चुपचाप खड़ी थी। उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भरी थीं किन्तु नन्दकिशोर ने उसकी तरफ देखा ही नहीं। वह हाथ पोंछ कर मजे से सिगरेट पीने लगा।

वनमाला अपने घर से चली तो लक्ष्मीनारायण के घर पहुँच कर ही दम लिया। लक्ष्मीनारायण की पत्नी वत्सला बरामदे में खड़ी थी। वनमाला ने उसके पास जा कर पूछा—

"बहन, तुम से एक बात पूछना चाहती हूँ।"

वत्सला बोली —"पूछो पूछो। इतनी उदास क्यों हो?"

"आज मेरे पति तुम्हारे यहाँ भोजन करने आये थे!"

"आये थे तो क्या उसके लिए लड़ने आई हो?" वत्सला ने जरा क्रुद्ध स्वर में पूछा।

'नहीं बहन' वनमाला ने विनय के साथ कहा—"तुम जानती हो उनका मिजाज़ बहुत नाजुक है। वे आज तक मेरी रसोई से खुश नहीं हुए। मैंने कितना प्रयत्न किया है। किताबें पढ़ कर अखबार चाट कर और लोगों से पूछ पूछ कर मैं तरह तरह की रसोई बनाती हूँ किन्तु वह उन्हें पसन्द ही नहीं आती। आज उनसे तुम्हारी रसोई की तारीफ़ सुनी तो सोचा देख आऊँ और तुम से उसके बनाने की विधि भी सीख आऊँ।"

"धत्, पगली! इसी बात से आधी हुई जाती है!" वत्सला ने स्नेह से कहा—"किस मर्द को घर का खाना पसन्द आया है जो तेरे मर्द को पसन्द आएगा! घर जा कर आराम कर और मुझे भी आराम करने दे।"

"नहीं बहन ऐसा मत कहो।" वनमाला ने अनुनय के स्वर में कहा—"मैं तुम्हारी रसोई देख कर ही जाऊँगी। एक बार मैं भी वैसी रसोई बनाऊँगी। उनकी प्रशंसा सुन कर मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगी।"

बोलते-बोलते वनमाला की आँखों में आँसू उमड़ आये। उसने बहुत कोशिश की रोकने की किन्तु आँसू की दो बूँदें गालों पर से ढलकते हुए नीचे गिर ही गये। उसने अपनी करुण कहानी वत्सला को सुनाई।

"अच्छा यह बात है तो दुःख मत करो। कल मैं पूरी चीजें तैयार करके तुम्हारे घर भिजवा दूँगी। ईश्वर ने चाहा तो तेरे पति प्रसन्न हो जाएँगे और तेरा दुःख हमेशा के लिए दूर हो जाएगा।"

कार्यालय से आज लक्ष्मीनारायण भी साथ ही नन्दकिशोर के घर चला आया। भोजन का समय हो चुका था अतः नन्दकिशोर ने उससे कहा—

"कल मैंने आपके यहाँ भोजन किया, आज आप मेरे यहाँ कीजिये।"

दोनों बातें करते करते रसोई घर में पहुँचे। पाटों पर बैठ गये। वन-

माला ने थाली परोस कर दोनों के सामने रख दी ।

"क्षमा चाहता हूँ लक्ष्मण भैया, दाल में जरा नमक अधिक है और साग कुछ फीका है ।" नन्दकिशोर ने वनमाला की ओर ताकते हुए अपना कथन जारी रखा -- "समझ में नहीं आता इसे कब रसोई बनानी आएगी। मालूम होता है साग और दाल दोनों का नमक दाल में ही डाला गया है। पकाते समय तुम्हारा ध्यान कहाँ रहता है वनमाला ?"

"जाने भी दो भैया। साग और दाल मिला कर खाओ तो नमक बराबर हो जाएगा।" लक्ष्मीनारायण ने हँसते हुए सुझाव रखा।

"क्या करूँ, परेशान हूँ। कल आपके यहाँ भोजन किया था। क्या स्वादिष्ट साग था ! याद आते ही मुँह में पानी आता है।"

वनमाला ने झिझकते हुए कहा—"तो फिर आपके घर से ही आज भी रसोई मँगवा ली जाए।"

"हाँ जरूर, मँगवा लीजिये" लक्ष्मीनारायण ने निस्संकोच हो कर कहा। उसने बुद्धू को आदेश भी दे दिया कि घर से तत्काल डिब्बे में भोजन ले आये।

बुद्धू ने आ कर उत्तर दिया मालकिन स्वयं भोजन ला रही हैं।

कुछ क्षण बाद वत्सला वहाँ पहुँची और बोली—"क्यों, आज खाना बहुत भा गया मालूम होता है ?"

"नहीं भाभी ! आज हमारे यहाँ बदकिस्मती से दाल में नमक ज्यादा गिर गया। लक्ष्मीनारायणजी ने कहा हमारे घर से खाना मँगा लिया जाए। मैंने भी स्वीकृति दे दी।" कह कर नन्दकिशोर हँसने लगा।

"मगर यह तो तुम मेरे घर की रसोई ही खा रहे हो। देखते नहीं आज तुम्हारे घर चूल्हा भी नहीं जला है।"

और वत्सला ने पूरी कहानी कह सुनाई। वत्सला ने अपने डिब्बे से एक एक करके सारी चीजें परोसीं। जब नन्दकिशोर ने उन्हें चखा तो सारा भेद खुल गया।

लक्ष्मीनारायण ने नन्दकिशोर को और भी लज्जित किया—"भैया

किशोर, तुमने भाभी के गुणों को परखा ही नहीं। बेचारी तुम्हारे लिए कितना कष्ट उठाती है और तुम हो कि उसका दिल दुखाते रहते हो।"

नन्दकिशोर अपनी झेंप मिटाता हुआ बोला--"समझ गया, सब कुछ समझ गया। तुम तीनों ने षड्यन्त्र रचा है। मैं अपनी हार मान लेता हूँ। इसके बाद वनमाला को कभी इस तरह नहीं सताऊँगा।"

सिफारिश

विनोदराव हाईकोर्ट के जज थे। उनका स्वभाव बहुत ही मिलनसार और सरल था। इतने बड़े पद पर रहते हुए भी अभिमान ने उन्हें छुआ तक नहीं था। वे प्रायः कहा करते थे—"यह पद ईश्वर ने दिया है। न जाने किस दिन इस पद को वह वापिस ले ले। किन्तु जो स्थान मुझे अपने मित्रों के हृदय में प्राप्त है वह मेरा अपना है। उसे कोई भी मुझ से नहीं छीन सकता।" इसलिए उनका द्वार सब के लिए खुला था। न वहाँ दरबान रहता था और न कोई प्राइवेट सेक्रेट्री। जो चाहता बैठक में पहुँच जाता। इससे पहले कि आने वाले का नाम, गाँव और आने का उद्देश्य पूछा जाता जज साहब उसे अपने पास बुला लेते।

उनसे मिलने के लिए आने वालों में कई तरह के लोग होते थे। कोई अपना मतलब निकालने के लिए आता तो कोई गप्पें लड़ा कर अपना समय बिताने के लिए आता था। कोई दार्शनिक या राजनीतिज्ञ होता था तो कोई सम्पादक और लेखक।

एक दिन एक ब्राह्मण देवता पहर के तड़के विनोदराव के पास पहुँच गये। ब्राह्मण देवता की लम्बी दाढ़ी और घनी मूँछ के परिमाण में काले से अधिक सफेद बाल इस बात को प्रकट कर रहे थे कि उनकी आयु साठ-पैंसठ से ऊपर ही होगी। पैर में खड़ाऊं। चौड़ी किनार की महाराष्ट्र की धोती। कुर्ते की जगह कलाबत्तू के काम का लाल दुशाला इस बात को प्रमाणित करता था कि गुरुजी का शिष्य-समुदाय बहुत सम्पन्न है। रंग गोरा, क़द ऊँचा और चेहरा गोल। हाथ सामान्य लोगों से कुछ बड़े। एक हाथ में ताम्बे का कमण्डल और दूसरे में अक्षत की पुड़िया। जिस समय ब्राह्मण देवता विनोदराव की बैठक में प्रविष्ट हुए ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सतयुग के विश्वामित्र या वसिष्ट ऋषि इस कलिकाल में प्रकट हुए हैं। विनोदराव ने उन्हें देखा और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गये।

ब्राह्मण ने कमण्डलु नीचे रखा। दोनो हाथों से अक्षत की पुड़ी खोल कर मंत्र पढ़ने लगे—'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्...।' मंत्र पढ़ते जा रहे थे और अक्षत विनोदराव के मस्तक पर छोड़ते जाते थे। अन्त में 'आयुष्मान्, कीर्त्तिमान्, वर्चस्ववान् भूयाः' कह कर कमण्डलु से थोड़ा जल ले कर जज साहब को अभिषिक्त किया। जज साहब इस प्रक्रिया के समय निश्चल और निश्चेष्ट खड़े रहे। विधि समाप्त होने पर ब्राह्मण ने जज साहब को कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। जज साहब ने इस संकेत का उसी तत्परता से पालन किया जिस तत्परता से सेना का सिपाही अपने सरदार के आदेश का पालन करता है। विनोदराव के बैठने पर ब्राह्मण देवता भी कोच पर आसीन हो गये। कुछ देर तक दोनों मौन रहे। सूझ नहीं रहा था बात कैसे शुरू की जाए। थोड़ी देर बाद विनोदराव ने अपने ड्रार से पाँच रुपये का नोट निकाल कर ब्राह्मण देवता को दक्षिणा में दिया। विनोदराव हमेशा विद्वान् ब्राह्मणों को दक्षिणा से सम्मानित करके विदा किया करते थे। पाँच रुपये के नोट को देख ब्राह्मण-देवता कुछ इस तरह से मुस्कराये जैसे प्रकट कर रहे हों कि इतने से काम नहीं चलेगा। वे तो राजा बली के दरबार में वामन बन कर आये हैं। उन्होंने कहा—

"विनोदराव, तुमने पहचाना नहीं !"

"नहीं महाराज ! इससे पूर्व आपसे मिलने का कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ ।" विनोदराव ने उत्तर दिया ।

"सच है । आपको कैसे याद रहेगा । हम तो आपके पिताजी के परिचितों में से हैं । उन वातों को पच्चीस तीस वर्ष हुए । उस समय तुम छोटे-से थे । हम उन दिनों तुम्हारे घर बहुत आया करते थे । हमें अब तक याद है जब तुम हमें घोड़ा बना कर हमारी पीठ पर चढ़ा करते थे । तुमसे हम क्या दक्षिणा लेंगे ?"

"भगवन् मालूम होता है आपको कुछ भ्रम हो गया है । मेरा बचपन यहाँ नहीं बीता ।" विनोदराव ने बीच में ही कहा—"संभवतः आप मेरे छोटे भाई की बात कर रहे हैं ।"

"हो सकता है । यह भी हो सकता है । किन्तु तुम्हारी और तुम्हारे भाई की सूरत कितनी मिलती-जुलती है ! कितनी अनुरूपता है तुम दोनों में ! आश्चर्य है ।"

"नहीं भगवन् हमारी आकृतियों में इतनी समानता नहीं कि एक में दूसरे का भ्रम हो ।" विनोदराव ने आश्चर्य से कहा—"फिर तो मालूम होता है आप मेरे भाई से भी नहीं मिले हैं ।"

विनोदराव की आँखों में स्पष्ट रूप से सन्देह झलक रहा था । उन्होंने अपनी टेबल का ड्रार खोला और वह पाँच रुपये का नोट उसमें रख कर उसे फिर बन्द कर दिया ।

'फिर ।' ब्राह्मण देवता ने आँखें चढ़ा कर छत की तरफ घुमा कर इस गंभीरता से कहा जैसे इतिहास के गर्भ से कोई अज्ञात घटना खोजने का प्रयत्न कर रहे हों—"हम तुमसे कब मिले होंगे ? कुछ याद नहीं आता । संभवतः हमारी तुम्हारी मुलाकात उस समय हुई होगी जब बारह-तेरह वर्ष पूर्व वकालत करते थे और हम आपके पास एक मुकदमा लाये थे । स्मरण कीजिये वही मुकद्दमा जिसमें एक भाई ने दूसरे भाई का कत्ल किया था ।"

"नहीं भगवन्, आपको बहुत भ्रम हो रहा है ।" विनोदराव ने स्पष्ट

रूप से कहा—"बहुत से भाइयों ने अब तक अपने भाइयों का कत्ल किया है और उनके मुकदमे भी अदालत में चले हैं, किन्तु मैंने आज तक कभी किसी फौजदारी मुकदमे में वकालत ही नहीं की। फिर आप मेरे पास वह कत्ल का मुकदमा क्यों लाये होंगे?"

ब्राह्मण देवता यह सुन कर भी हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा—"हो सकता है तुमने कभी कोई फौजदारी मुकदमा नहीं लिया हो, किन्तु प्रश्न तो यह है कि मैंने तुमको कब और कहाँ देखा है? मैं यह कैसे मान लूँ कि तुम्हें पहली बार देखा है। मेरे स्मृति-पटल पर आपकी मूर्ति अंकित है।" इतना कह कर ब्राह्मण देवता ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और कुछ क्षण बाद चौंक कर उन्होंने कहा—"हाँ, अब याद आया। तुम जब नाँदेड़ के दौरे पर गये थे तो स्टेशन पर तुम्हारा जोरदार स्वागत हुआ था। उन स्वागत करने वालों में मैं भी था और मैंने आपको फूलों का हार पहनाया था। वह घटना वैसे ही याद है, जैसे कल ही घटी हो।"

अब तक विनोदराव के चेहरे पर केवल सन्देह झलक रहा था किन्तु अब वह सन्देह क्रोध में परिवर्तित हो चुका था। सदा शान्त रहने वाले व्यक्ति ने भी जरा झुंझला कर कहा—

"देवताजी, दौरे पर तो केवल हाईकोर्ट का मुख्य न्यायाधीश जाता है। साधारण जज कभी दौरे नहीं करता। मैं आज तक नाँदेड़ नहीं गया। आप अपनी स्मरण-शक्ति पर व्यर्थ ही अत्याचार कर रहे हैं। यदि हम दोनों इससे पहले कभी एक दूसरे से नहीं मिले तो इससे आपका क्या नुकसान होगा? आप जिस भाव से यहाँ आये हैं, जरा बताइये तो सही। मैं यों ही, बिना परिचय के भी आपकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ।"

'भावना? मुझ जैसे ब्राह्मण में कौन-सी भावना और इच्छा रहेगी? वर्षों पहले मैंने अपनी समस्त इच्छाओं का दमन कर दिया। अब बस एक ही लालसा है—सेवा, मानव मात्र की सेवा। सेवा के अतिरिक्त कोई इच्छा शेष नहीं।"

"मालूम होता है, नाँदेड़ में आपकी कोई संस्था है, और आप उसके

लिए चन्दा चाहते हैं ?" जज साहब ने प्रश्न किया।

"नहीं जी, मुझे संस्थाओं से बहुत घृणा है। ढोंगी लोग संस्था चलाते हैं। यदि तुम अवसर दो तो मैं तुम्हारी व्यक्तिगत सेवा करना चाहता हूँ।"

"राम राम, आप यह क्या कहते हैं महाराज! आपसे मैं सेवा कराऊँगा ? मेरा अहोभाग्य होगा जो मैं आपकी कुछ सेवा कर सका।"

"विनोदराव, सेवा अन्योन्याश्रित वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के काम आ सकता है। किन्तु सेवा सेवा में अन्तर होता है। माता पुत्र की सेवा करती है जब उसे स्नान कराती है या खाना खिलाती है और पुत्र माता की सेवा करता है, जब वह उसके पाँव दाबता है। इसी तरह ब्राह्मण अपनी विद्वत्ता से गृहस्थ की सेवा करता है और गृहस्थ अपने दान से विद्वान की सेवा का अवसर पाता है। मैंने जब तुम्हारी सेवा की बात कही तो उसके मूल में यही बात थी। मैं सेव्य-सेवक के रूप में वह बात नहीं कह रहा था।"

"तब भगवन् शीघ्र ही कहिये, आपकी क्या आज्ञा है ?" जज साहब ने अधीर हो कर पूछा।

"ब्राह्मण आपकी और क्या सेवा कर सकता है ? मेरी ज्योतिष में कुछ गति है। इच्छा है तुम्हारी जन्म पत्री देख कर कुछ सेवा करूँ।"

"मेरा तो इस शास्त्र पर भरोसा नहीं है, महाराज! जो बात होने वाली है उसके पहले से जानने से क्या लाभ ?"

ब्राह्मण ने और भी संभल कर कहा—"तुम्हारा ही नहीं बहुत से लोगों का इस शास्त्र पर विश्वास नहीं है। ज्योतिष भी ऋतु-विज्ञान की तरह एक विज्ञान है। ऋतु-विज्ञान में प्रवीण व्यक्ति बता सकता है कि अमुक समय वर्षा होगी और अमुक समय हवा अमुक दिशा में इतने वेग से चलेगी। ऋतु-विज्ञान से विदेशों में बहुत काम लिया जाता है। इसी विज्ञान के आधार पर वहाँ खेतों की जुताई-बुआई होती है। विमान-चालक इसी विज्ञान के आधार पर अपने विमानों को ठीक दिशा में ठीक ऊँचाई पर ले जाते हैं। यही हाल ज्योतिष शास्त्र का है। जिस तरह होशियार नाविक वायु के अनुसार अपनी पतवार को संभालता है, उसी तरह मनुष्य अपने भविष्य से परिचित हो कर

जीवन सफल बना सकता है। ज्योतिष शास्त्र अवैज्ञानिक नहीं है। तुम अपनी जन्मपत्री दे कर मुझे सेवा का अवसर प्रदान करो।"

विनोदराव अपने अनुभव के आधार पर भाँप गये कि हजरत किसी काम से आये हैं किन्तु बता नहीं रहे हैं। चतुर पहलवान जिस तरह अपने प्रतिद्वन्दी को आरंभ में दाव-पेंच में उलझाये रखते हैं उसी तरह ये भी पैंतरे बदल रहे हैं। अधिक बात करना बेकार है। यही सोच कर विनोदराव ने कहा—

"मुझे दुःख है मैं आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। जब मैं पैदा हुआ था मेरे माता-पिता इस स्थिति में नहीं थे कि वे मेरी जन्मपत्री बनवाते।"

"न सही जन्मपत्री। तुमको अपना जन्म नाम तो याद होगा ही। यदि तुम्हें याद नहीं तो तुम्हारी पत्नी को अवश्य होगा। महिलाएँ इन बातों को बहुत याद रखती हैं।"

विनोदराव ने झुंझला कर कहा—"आप जो चाहते हैं, कहते क्यों नहीं? अदालत जाने का मेरा समय हो चुका है। व्यर्थ क्यों इधर-उधर की बातें कर रहे हैं?"

"मेरा कोई मतलब नहीं। मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि बरसों पहले मैंने अपनी समस्त इच्छाओं को स्वाहा कर दिया। अब आप अनुरोध ही कर रहे हैं तो एक बात कहे देता हूँ। इसमें भी मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं। यह भी एक परोपकार का काम है। कल आपके इजलास पर रामचन्द्र बनाम गोविन्दराम का मुकदमा पेश होगा। रामचन्द्र बहुत गरीब आदमी है। वह बिल्कुल बेकार है। दो मास पहले ही उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। छोटे छोटे चार बच्चे हैं। अधिक क्या कहूँ, उस बेचारे के जीवन-मरण का सवाल है।"

विनोदराव जहाँ गम्भीर थे वहाँ कभी कभी विनोदी भी बन जाते थे। उन्होंने कहा—

"आपने यों ही इतना समय बर्बाद किया। यदि आते ही यह बात कह देते तो मिनटों में मामला साफ हो जाता। कल ही गोविन्दराव मेरे पास

आये थे। कहते थे उनके पास इस जायदाद के सिवाय कुछ भी नहीं है। पत्नी के गहने बेच बेच कर घर चला रहा है और इसीलिए उसकी पत्नी को दिक हो गया। यदि यह जमीन हाथ से निकल गई तो उनके परिवार के सामने मरने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि मेरा प्रतिद्वन्दी ब्राह्मण वेश में आपके पास आयेगा सो रामचन्द्र जी आप तशरीफ ले जाइये और विश्वास रखिये कि आपके साथ पूरा पूरा न्याय होगा।

पुनर्मिलन

आज हाईकोर्ट की सीढ़ियाँ उतरते समय डायमण्ड रूबी ऐण्ड कम्पनी के मालिक राय महताबलाल का मन अप्रत्याशित रूप से हर्षित था। उनके हृदय में नई नई उमंगें उठ रही थीं। अभी एक विचार पूरी तरह समाप्त भी नहीं हुआ कि दूसरा विचार दूर से उठ कर निकट आता हुआ दिखाई देता। आज छः मास तक कठोर परिश्रम करने के बाद उन्हें सफलता मिली थी। हाईकोर्ट ने आज उन्हें अपनी विवाहिता पत्नी इन्दिराबाई को तलाक देने की अनुमति दे दी थी।

आज से दस वर्ष पूर्व जब राय महताबलाल कालेज में पढ़ते थे उनका परिचय क्लास की एक लड़की से हुआ। जिस तरह पानी पर गिरी हुई बूँद धीरे धीरे पूरे पानी पर फैल जाती है उसी तरह उस लड़की—इन्दिरा का प्रभाव राय साहब के मन पर पड़ा। दोनों एक क्लास में पढ़ते थे किन्तु वर-वधू में जितने दिनों का अन्तर होना चाहिए उतना अन्तर उन दोनों में था। क्योंकि राय साहब प्रत्येक श्रेणी में विश्राम करते आ रहे थे और इन्दिरा सीधी चली

आ रही थी, विना कहीं रुके हुए। वीस वर्ष की आयु में वह सीनियर वी. ए. में पहुँची जहाँ राय साहव पिछले वर्ष से आराम कर रहे थे। प्रकृति का नियम है लहर के भेद के साथ शब्द ताप में, ताप प्रकाश में और प्रकाश विद्युत में वदल जाती है। यही नियम मनुष्य के जीवन पर भी लागू होता है। उचित स्थान और समय प्राप्त होने पर स्त्री पुरुष का परिचय मित्रता में और मित्रता प्रेम में तथा प्रेम प्रणय में वदल जाता है। महतावलाल और इन्दिरा को अनुभव हुआ कि कालेज छोड़ने के वाद वे एक दूसरे के देखे विना जीवित नहीं रह सकेंगे। उन दोनों में अभिन्नता स्थापित हो चुकी थी और ऐसी अवस्था में एक-दूसरे से अलग होने का मतलव था एक हृदय के दो टुकड़े किये जाएँ। वे दोनों भी सुशिक्षित थे, अतः विवाह रजिस्ट्रेशन प्रणाली से सम्पन्न हुआ।

आठ नौ वर्ष तक दोनों ने वड़े आनन्द से समय विताया। पिता ने काफी सम्पत्ति इकट्ठी की थी। संयोग से डायमण्ड रूवी ऐण्ड कम्पनी का व्यापार भी वरावर वढ़ रहा था। इन्दिरा के श्वसुर मर चुके थे अतः घर और दूकान पर पतिदेव का पूरा अधिकार था। जव तक सास जीवित रही वह वहू को उसी तरह गर्मी-सर्दी से वचाती रही जैसे माली अपने लगाये पौधों के पत्तों को वचाता है। सास के रहते वहू को घर के काम-काज में चित्त देने की जरूरत ही नहीं पड़ी। उसके अपने वच्चे की देख भाल भी सास ही किया करती थी। इन्दिरा अपना पूरा समय अपने पति के साथ विता सकती थी और इस वात पर पूरी तरह नज़र रख सकती थी कि कहीं कोई उसके मार्ग में काँटे तो नहीं विछा रहा है।

दो मास हुए, इन्दिरा की सास का देहान्त हो गया। सास के मरते ही इन्दिरा को घर के काम-काज में भी समय देना पड़ता था। अव वह पति के साथ सायंकाल का समय या छुट्टी का दिन किसी वाग-वगीचे या क्लव में नहीं गुजार सकती थी। इस वीच महतावलाल का परिचय माटुंगा क्लव में मनोरमा नामक एक सम्पन्न किन्तु विधवा स्त्री से हुआ। वह सुशिक्षित और सुन्दर भी थी। मनोरमा के एक एक वाक्य का प्रभाव महताव के मन पर वैसा ही होता था जैसे काली रात में राह भूले पथिक के हृदय पर विजली की

कौंध का होता है। यद्यपि प्रकाश समान ही होता है किन्तु जितनी बार विजली चमकती है उसके प्रकाश की ऐंठ निराली ही होती है। मनोरमा का आकर्षण दिन दिन बढ़ता गया। मन ही मन राय साहब इन्दिरा और मनोरमा की सुन्दरता की तुलना करते थे। उन्होंने देखा मनोरमा का रंग इन्दिरा से अधिक गोरा है। मनोरमा की भौंहें इन्दिरा की अपेक्षा अधिक घनी हैं। मनोरमा का केश-कलाप अधिक अच्छा लगता है और उसकी आँखों में पैनापन ज्यादा है। चलने में वह बल खाती है। कहने का मतलब यह कि राय साहब को मनोरमा की प्रत्येक बात में कोई न कोई अच्छाई और विशेषता नज़र आती थी जो इन्दिरा में नहीं दिखाई देती थी। एक ओर मनोरमा के प्रति आकर्षण बढ़ता गया तो दूसरी ओर इन्दिरा के प्रति घृणा होती गई। वे दिन-रात इसी सोच में लगे हुए थे कि मनोरमा को अपनाने के लिए इन्दिरा से कैसे पिण्ड छुड़ाया जा सकता है? उन्होंने इन्दिरा को घर से निकाल दिया था किन्तु रजिस्टर्ड-विवाह प्रणाली के अनुसार वे बिना तलाक की अनुमति के मनोरमा से विवाह नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने हाईकोर्ट से डाइवर्स की प्रार्थना की थी।

× × × ×

पैसे वालों के लिए अदालतों में झूठे मुकदमे जीतना कठिन नहीं है। मुकदमे का फैसला गवाह के बयान पर होता है। यदि गवाह बड़ी सफाई से झूठा बयान दे तो न्यायाधीश के लिए वास्तविक बात के जानने में मुश्किल होती है। हमने न्याय-दान के लिए अँग्रेजी प्रणाली स्वीकार की है। यद्यपि इस प्रणाली में न्याय करने की स्वतन्त्रता सुरक्षित है किन्तु फिर भी इसमें परिवर्त्तन की अत्यन्त और वह भी अविलम्ब आवश्यकता है। ऐसे मुकदमों की कमी नहीं जिन्हें दादा दायर कर गए और पोते चला रहे हैं। इस प्रणाली में विलम्बन का दोष है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली खर्चीली भी कम नहीं है। यह प्रणाली वर्त्तमान युद्धों से मेल खाती है, जिसमें हारने वाला तो हार ही जाता है किन्तु जीतने वाला राष्ट्र भी ऐसी दलदल में फँस जाता है कि उसमें से निकलने के लिए बरसों लग जाते हैं। इसी तरह मुकदमों में भी देखा गया है

कि दोनों पक्ष लड़ते-लड़ते गाँठ की पूँजी गँवा देते हैं और दोनों को कर्जदार होना पड़ता है। राय महतावलाल ने इन्दिरा के विरुद्ध जो दावा दायर किया था वह इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

सम्बन्ध-विच्छेद के लिए राय साहब ने आक्षेप लगाया था कि इन्दिरा का किसी अन्य पुरुष से अनुचित सम्बन्ध है। गवाही में किसी होटल के एक मैनेजर को पेश किया गया जिसने बताया कि अमुक रात अमुक व्यक्ति उसके होटल में पति-पत्नी का उल्लेख करके ठहरे थे।

यदि इन्दिरा मुकदमे में पैरवी करती तो शायद राय साहब के लिए मुकदमा जीतना और भी आसान होता। उस समय उनके गवाह यह कह सकते थे कि यह वही औरत है जो अमुक के साथ होटल में ठहरी थी। किन्तु उस साध्वी ने अदालत में किसी तरह की पैरवी करने से अस्वीकार कर दिया।

इन्दिरा के इस रुख से राय साहब की परेशानी बढ़ गई। आखिर यह किस तरह सिद्ध किया जाए कि उस रात अमुक व्यक्ति के साथ उस होटल में ठहरने वाली स्त्री इन्दिराबाई ही थी। वकील ने इस उलझन को इस तरह सुलझाया कि गवाह कह दे वह इन्दिरा को पहले से ही जानता था। राय साहब और इन्दिराबाई कई बार उस होटल में आ कर ठहरे थे।

होटलवाले की इस गवाही पर जज ने प्रश्न किया—

"यदि तुम इन्दिरा को पहचानते थे और तुम यह भी जानते थे कि वह राय महतावलाल की पत्नी है तो तुमने उसे एक दूसरे व्यक्ति की पत्नी के रूप में अपने यहाँ क्यों आश्रय दिया और अपने परिचित व्यक्ति महतावलाल को तत्काल इस बात की सूचना क्यों नहीं दी ?"

गवाह इस प्रश्न का सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सका।

जिस दिन जज ने गवाह से यह प्रश्न किया महतावलाल को काटो तो खून नहीं था। उस दिन उनकी नींद हराम हो गई। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते एक ही प्रश्न बेचैन कर रहा था। "जब तुम जानते थे कि इन्दिरा राय महतावलाल की पत्नी है तो तुमने उसे दूसरे पुरुष की पत्नी के रूप में अपने होटल में आश्रय क्यों दिया ?"

राय साहब मन ही मन सोचते थे न जाने जज क्या निर्णय दे। यदि उन्होंने एक मात्र गवाह होटल के मैनेजर को झूठा समझा तो बना बनाया खेल बिगड़ जाएगा। मनोरमा सुन्दर थी, चञ्चल थी, चपल थी किन्तु निर्लज्जा नहीं थी कि अविवाहित रह कर भी महताबलाल के साथ रहे।

कानून भी क्या विचित्र चीज है! महताबलाल का भविष्य, मनोरमा का भाग्य और इन्दिरा के माथे पर लगने वाला कलंक का टीका, सब कुछ कानून पर निर्भर था।

अन्त में जज ने अपना फैसला आज सुना ही दिया—

"यह सच है कि होटल के मैनेजर ने इस बात का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया कि उसने जानते-बूझते हुए भी अपने होटल में अनैतिक कार्य क्यों होने दिया। किन्तु मैनेजर ने शपथ ले कर अपना बयान दिया है अतः उसे झूठा नहीं कहा जा सकता। इस बारे में मैनेजर पर अलग कार्यवाही की जा सकती है। पुलिस के पास उसकी गवाही की कापी भेज दी जायगी। हमें तो इन्दिरा के बारे में विचार करना है। सूचना देने पर भी इन्दिरा अदालत में पैरवी करने के लिए नहीं आई। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह होटल के मैनेजर की बात स्वीकार करती है। हो सकता है वह स्वयं भी तलाक चाहती है जिससे अपने इच्छित पुरुष के साथ रह सके। अतः महताबलाल को तलाक की अनुमति दी जाती है।"

इस निर्णय को सुन कर जब महताबलाल हाईकोर्ट की सीढ़ियाँ उतर रहे थे तो उनके मन की अवस्था बड़ी विचित्र थी। उसमें कोई बात टिक नहीं रही थी। कभी एक बात आती तो दूसरे क्षण दूसरा प्रश्न उपस्थित होता। एक क्षण वे जज की कुशाग्र-बुद्धि की सराहना करते तो दूसरे क्षण अपने वकील की चतुराई पर मुग्ध होते। तीसरे क्षण यह सोच कर आनन्द में मग्न हो जाते कि अब उनका विवाह मनोरमा से हो जाएगा और दिन बहुत आनन्द से बीतेंगे। बीच बीच में इन्दिरा की आकृति भी आँखों के आगे घूम जाती और उनका मन मारे लज्जा के सिहर उठता था। फिर सोचते समाज क्या सोचेगा? अदालत के निर्णय के बाद लोग इन्दिरा को दुश्चरित्र और मुझे

सच्चरित्र समझेंगे ? अगर लोगों ने ऐसा नहीं समझा तो मैं क्या मुँह ले कर समाज में जाऊँगा ? मनोरमा के साथ मैं आजीवन सुखी रह सकूँगा ? क्या कोई और युवती बीच में ही आ कर नाटक के इस दृश्य पर भी यवनिका–पात न करेगी ? इन सब बातों पर सोचने से क्या लाभ ? अब तो साहस से कदम बढ़ाना चाहिए ।

इस तरह वे आश्चर्य, भय, लज्जा, विषाद आदि भावों में तैरते-उतराते फ्लोरा फाउण्टेन के पास पहुँचे । वहाँ से उन्होंने एक टैक्सी ली और ड्राइवर को नगर के प्रमुख जौहरी की दूकान पर चलने के लिए कहा । इस दूकान पर नववधू के लिए हीरे और माणिक्य का मंगल-सूत्र बनाने का आदेश पहले से ही दिया जा चुका था ।

× × × ×

राय महताबलाल मंगलसूत्र जेब में रख कर प्रिन्सेस स्ट्रीट की तरफ चले । वे चाहते थे कि मनोरमा को एक बार मंगल-सूत्र दिखा लिया जाय । इतने में उन्हें सामने से इन्दिरा आती दिखाई दी । इन्दिरा क्या थी उसकी छाया मात्र, उसका अस्थिपिंजर मात्र चला आ रहा था । राय साहब जब तक उस अस्थिपिंजर को पहचाने वह बिलकुल सामने आ गई । दोनों के हृदयों में इस अप्रत्याशित भेंट के कारण आश्चर्य की सीमा नहीं थी । दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते थे किन्तु न जाने किस शक्ति ने उनके मुख पर ताला जड़ दिया था । सिर नीचा किये दोनों विपरीत दिशा में बढ़ गये । ऐसे अवसरों पर व्यक्ति कुछ आगे निकल कर पीछे की ओर ताकता है । इसीलिए दोनों ने मुड़ कर एक दूसरे को देखा । महताबलाल अपना सन्देह मिटाना चाहते थे कि कहीं वे स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं और इन्दिरा चाहती थी कि लौट कर एक बार राय साहब का कुशल मंगल तो पूछ लूँ । जो आँखें अभी आमने सामने होने पर भी चार नहीं हो सकीं वे ही इस बार स्थिर हो गईं और दोनों अपनी अपनी जगह स्तब्ध खड़े हो गये । इन्दिरा की आँखों में विनय थी जो महताब-लाल को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी और महताबलाल भी अनजाने उस विनय से खिंचे जा रहे थे । संभवतः उन्होंने सोचा हो कि जो होना था

सो तो हो गया अब मुकदमे का हाल इन्दिरा को भी क्यों न सुना दिया जाए। उन्होंने कुछ बढ़ कर पूछा—

"कैसी हो इन्दिरा ?"

"आपकी दया से सुखी हूँ।"

इन्दिरा के हाथ में औषधि देख कर राय साहब ने पूछा—

"क्या कुछ बीमार हो ? यह औषधि कैसी है ?"

"मैं तो ठीक हूँ, किन्तु प्रमोद बहुत बीमार है।"

"क्यों क्या हो गया है उसे ?"

"डाक्टर का कहना है उसका टायफ़ाइड उलट गया है।"

इतना कह कर इन्दिरा चुप खड़ी रही। महताब समझ गये कि इस बिचारी के पास इतना पैसा नहीं है जो बच्चे का अच्छी तरह इलाज करा सके। उनकी आँखों के आगे प्रमोद का चेहरा घूमने लगा।

दो वर्ष पहले भी वह बीमार हुआ था। उस समय वह अपने पिता के सिवाय किसी से दवा नहीं लेता था। महताब के हृदय में इन्दिरा का स्थान मनोरमा ने ले लिया था, किन्तु प्रमोद तो अपने स्थान पर बैठा था। उसकी बीमारी की बात सुन कर राय साहब व्याकुल हो गये। उन्हें आभास हुआ जैसे प्रमोद ने दवा के लिए उनके सामने मुँह खोला है। उनके मन में प्रमोद को देखने की इच्छा तीव्र हो गई। वे इन्दिरा से बोले—

"क्या मैं प्रमोद को देख सकता हूँ ?"

"क्यों नहीं ?" इन्दिरा ने उल्टा प्रश्न किया।

इन्दिरा और महताबलाल एक रास्ते पर चल रहे थे। दोनों के मन भरे हुए थे। एक-दूसरे से दोनों बहुत कुछ कहना चाहते थे किन्तु किसी अज्ञात भय ने उनका मुँह बन्द कर रखा था। दोनों चुपचाप एक के बाद एक गली पार कर रहे थे! अन्त में इन्दिरा एक गली में तीसरी मंजिल पर एक अँधेरी कोठरी में राय साहब को ले गई। प्रमोद बेहोश पड़ा था। उसकी आँखें अन्दर धँस गई थीं। पेट पीठ से लग गया था। एक एक पँसुली गिनी जा सकती थी। बिस्तर पर लड़के का अस्थि-पिंजर पड़ा था। राय साहब लड़के को देखने के

लिए ज्यों ही झुके तो अपने को रोक नहीं सके। पुत्र का स्नेह उमड़ आया। उनकी दोनों आँखों से अश्रु-धारा बह चली। प्रमोद के चहरे पर आँसू की बूँद टपकी तो उसने आँख खोल कर देखा। उसने अपने दोनों हाथ पिता के गले में डाल दिये और ऊपर उठने का प्रयत्न करने लगा। राय साहब घुटने टेक कर बगल में बैठ गये जिससे प्रमोद को उठना न पड़े। बच्चे ने उनके मुँह को अपने मुँह की तरफ खींच कर कहा --

"मेरे अच्छे बापू, इतने दिन तक तुम क्यों नहीं आये ?"

"मुझे मालूम नहीं था कि मेरा मुन्नू बीमार है। अब तू जल्दी ही अच्छा हो जाएगा।"

"हाँ बापू, अब मैं जल्दी ही चंगा हो जाऊँगा। मुझे अच्छी दवा दिलाइये। माँ दवाई नहीं लाती।" कहते कहते बच्चे के दोनों हाथ खाट पर पड़ गये और वह फिर बेहोश हो गया। राय साहब ने दस्ती निकाल कर अपने आँसू पोंछे।

इन्दिरा के लिए यह दृश्य असह्य हो गया। बेटे का वाक्य उसके कानों में गूँजने लगे—"माँ अच्छी दवा नहीं दिलाती।"

"अरे अभागे, माँ तुझे तीन दिन से दवा ही कहाँ दे रही है जो तू अपने बाप से अच्छी और बुरी की शिकायत करे। न जाने तूने पिछले जनम में क्या पाप किये थे जो मुझ अभागिन के पेट से पैदा हुआ। बाप लखपती और बेटे की दवा के लिए छः आने नसीब नहीं।"

"क्या कहती हो इन्दिरा तीन दिन से बच्चे को दवा नहीं मिली ! इसीलिए तो इसका बुखार इतना तेज है। और इस शीशी में क्या है ?"

"न—म—क— का —पा—नी" इन्दिरा एकदम फूट पड़ी।

"क्या ?" महताबराय ने पूछा।

"कहाँ से पैसा लाती ? डाक्टर को पाँच दिन के पैसे देने हैं। उसने दवा देना बन्द कर दिया। वेतन मिलने में दो दिन बाकी हैं। अगर दो दिन कट गये तो इसके लिए दवा लाऊँगी। अब तो इसका मन रखने के लिए नमक का पानी ला कर दे रही हूँ। इस दुष्ट ने भी आखिर पहचान ही लिया।

इसीलिए तो कहता था - माँ अच्छी दवा नहीं देती।"

इन्दिरा फफक-फफक कर रो रही थी। आँसू पोंछने के लिए उसका आँचल पर्याप्त नहीं था।

"इस तरह रोओ मत इन्दिरा।" महताब ने सान्त्वना देते हुए कहा—"अच्छा हुआ आज मैं मिल गया। अब तुम चिन्ता मत मरो। मैं डाक्टर और दवा का प्रबन्ध करता हूँ। ये दो सौ रुपये लो। डाक्टर के पैसे चुका दो। उसे बुला कर बच्चे को दिखा देना और नियम से बच्चे को दवा देना।"

महताब ने सोचा इन्दिरा रुपये ले लेगी। प्रमोद के लिए डाक्टर आ जायगा और इस तरह उसके कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाएगी। किन्तु इन्दिरा अपने स्थान से हटी नहीं। वह उसी तरह बार बार अपने आँसू पोंछती रही।

"ले लो इन्दिरा! जल्दी से डाक्टर को बुला लाओ। मैं यहीं मुन्ना के पास बैठा हूँ।" महताब ने अपना धैर्य समेट कर कहा।

"मैं आपके रुपये ले लूँ? आप मेरे कौन होते हैं जो मैं आपके रुपये ले लूँ? इन पैसों को मैं छू भी नहीं सकती। डेढ़ मास तक मेरे बेटे की जो बिना दवा-दारू और दूध-फल के रक्षा करता रहा है वह अब भी रखवाली करेगा। प्रमोद को तुम्हारे रुपयों की जरूरत नहीं है, तुम्हारे प्रेम की जरूरत है। तुमने देखा नहीं इतने कमजोर बच्चे में भी तुम्हारे देखते ही कितना बल आ गया था?" इन्दिरा का गला फिर भर आया। वह चिल्ला कर बोली—"मुझ अभागिन को न सही किन्तु अपने इस बेटे को तो..." इन्दिरा अधिक नहीं कह सकी और वह बेहोश हो कर गिर गई। इधर महताब के मन में विचार उत्पन्न हुआ—

मैं इस अबोध बालक को अपने घर ले जाऊँगा। जरूर ले जाऊँगा। मेरे सिवाय इसका कौन है? यह किसके सहारे जिएगा? फिर उसके मस्तिष्क में आ खड़ी हुई इन्दिरा। इन्दिरा के बिना इसकी देखभाल कौन करेगा? इन्दिरा को भी साथ ले चलना पड़ेगा। हाँ, मैं बालक के साथ इन्दिरा को भी ले जाऊँगा। माँ के बिना बालक उसी तरह उपेक्षित होता है जिस तरह पेड़ से गिरा हुआ पत्ता। मैं प्रमोद को कभी इस हालत में नहीं रहने दूँगा।

उनकी दृष्टि फर्श पर पड़ी हुई इन्दिरा पर गई। उसकी आँखें कुछ खुली हुई थीं किन्तु उसे अब भी सुध-बुध नहीं थी। कहते हैं जब स्त्री अपनी असहाय अवस्था में सन्तप्त हो कर उद्विग्न होती है तो परमेश्वर की गोद में होती है। महताब ने इन्दिरा को इसी रूप में देखा। उसे इन्दिरा में दैवी शक्ति का आभास हुआ। वह इन्दिरा के पास पहुँचा। उसने प्रश्न किया—

"इन्दिरा तुम मेरे साथ चलोगी?"

"तुम्हारे साथ? तुम मेरे क्या लगते हो?"

"मैं तुम्हारा पति हूँ इन्दिरा!"

"झूठ, बिल्कुल झूठ! तुमने अपना पतित्व उसी दिन खो दिया जिस दिन मेरा मंगल-सूत्र तोड़ कर तुमने मुझे और प्रमोद को घर से बाहर निकाल दिया था। अब मैं तुम्हारी कोई नहीं। मैं पराए पुरुष के साथ नहीं चल सकती।" इन्दिरा के स्वर में दृढ़ता थी।

"मुझे क्षमा कर दो इन्दिरा! मैं पापी हूँ, दुष्ट हूँ, मैं नीच हूँ, अधम हूँ, राक्षस हूँ, मुझे क्षमा कर दो। कहीं मैं तुम्हारी इस अन्तरात्मा को देख पाता जिसके दर्शन आज हुए हैं। जिन हाथों से मैंने तुम्हारा मंगल-सूत्र तोड़ा था उन्हीं हाथों से यह नया मंगल-सूत्र, पहले से भी अधिक सुन्दर और दृढ़, तुम्हारे गले में बाँधता हूँ।"

महतावराय ने बड़ी तेजी से इन्दिरा के गले में मंगल-सूत्र बाँध दिया। इन्दिरा की समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है, क्या होने जा रहा है।

इसी समय प्रमोद ने धीमी आवाज में पूछा—"बापू, तुम दवा ले आये?"

सरदारजी

इन दिनों मध्यमवर्ग के लोगों की सभी जगह दुर्दशा है। मजदूर की मजदूरी पहले से चौगुनी हो गई है। उसके परिवार का प्रत्येक सदस्य कमाता है। फिर मजदूर को किसी तरह का टैक्स नहीं देना पड़ता। अमीर लोग काले बाजार में पौ-बारह करते हैं और फिर झूठे हिसाब दिखा कर सरकारी करों से भी बच जाते हैं। लेकिन क्लर्क, मास्टर, डाक्टर और वकील हैं कि उनकी आमदनी में तो कोई खास वृद्धि नहीं हुई किन्तु उनके खर्च कई गुना बढ़ गये हैं। फिर मुश्किल यह कि पोजीशन के कारण घरवाली कहीं काम भी नहीं कर सकती। लड़के को एम्. ए. तक पढ़ाना ही पड़ेगा। पढ़ाई का खर्च भी कम नहीं। मतलब यह कि मध्यमवर्ग के लोगों की सब तरह से फ़जीहत है। नेतागिरी का पेशा भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता।

नेतागिरी के पेशे में एक नीचे की श्रेणी है। इस श्रेणी के लोगों को सामान्यतया स्वयंसेवक कहते हैं। यह वर्ग बिना संकोच सार्वजनिक संस्था से अपने परिश्रम का मुआविजा पा सकता है। जो बड़े नेता हैं उनकी बात ही

न्यारी है। इनके मकान का प्रबन्ध अगर एक सेठ करता है तो सवारी का दूसरा सेठ और भोजन का तीसरा। इस श्रेणी के नेता जब बाहर जाते हैं तो उनका धूम-धाम से स्वागत होता है। जुलूस निकलता है। सभा में ऊँची जगह बैठाये जाते हैं। इन दोनों के बीच में रहता है मध्यमवर्ग का नेता। इस वर्ग के नेता को नेतागिरी के शौक में घर का खा कर बाहर का काम करना पड़ता है। कभी कभी भूले भटके इनका स्वागत भी हो जाता है किन्तु प्रायः इन्हीं को दूसरों का स्वागत करना पड़ता है। इन्हें लेने के लिए भी कभी कभी स्टेशन पर सवारी आ जाती है किन्तु लौटते समय इन्हें अपना सामान खुद कंधे पर लाद कर स्टेशन पर आना पड़ता है। अनन्तपुर के वकील श्री यशवन्तराव इसी श्रेणी के नेता थे।

लगभग दस वर्ष पहले बम्बई विश्वविद्यालय से वकालत पास करके अनन्तपुर में बस गये थे और वकालत करते थे। विद्यार्थी अवस्था से ही आप सार्वजनिक कामों में भाग लेते थे। ईश्वर की ओर से प्रतिभा मिली थी। व्याख्यान देने का ढंग भी प्रभावशाली था। थोड़े ही दिनों में अनन्तपुर में आपकी धूम मच गई। नगर में जब कभी सार्वजनिक समारोह, पारितोषिक वितरण, किसी संस्था का उद्घाटन या किसी भवन का शिलान्यास होता तो आप सभा की अध्यक्षता करते। इन कामों में इनका अधिकांश समय व्यतीत होने लगा। इसीलिए इनके मुवक्किल धीरे धीरे खिसकने लगे। यहाँ तक कि लोगों में यह चर्चा फैल गई कि यशवन्तजी सार्वजनिक सेवा के लिए अपनी वकालत भी छोड़ देंगे! इस चर्चा ने उनके सम्मान को और बढ़ा दिया, अब केवल अनन्तपुर ही नहीं उस प्रान्त के नेताओं में उनकी गिनती होने लगी।

× × × ×

आज अनन्तपुर में काफी हलचल थी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन एक तरह से समाप्त हो गया था और एक एक करके सत्याग्रही जेल से बाहर आ रहे थे। काँग्रेसियों में कुछ दिन तक वाद-विवाद चलता रहा और अन्त में कौन्सिल-प्रवेश के समर्थकों और कौंसिल-विरोधियों में काँग्रेस बँट गई।

पहले दल के नेता देशबन्धु चितरञ्जनदास थे तो दूसरे का नेतृत्व मद्रास के वर्तमान मुख्य मन्त्री राजगोपालाचार्य करते थे। जब चुनाव हुए तो काँग्रेस को प्रायः प्रत्येक प्रान्त में बहुत सफलता मिली। केन्द्रीय धारा-सभा में देशबन्धु और उनके साथी बहुत जोरदार भाषण देते थे। इधर सत्याग्रह स्थगित हो चुका था और गांधीजी काँग्रेस की साधारण-सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे चुके थे।

बिलासपुर में महादेवी विद्यालय का उद्घाटन रखा गया। इस अवसर पर काँग्रेस-निधि में पाँच हजार रुपये एकत्रित करने का निश्चय किया गया था। थैली स्वीकार करने के लिए स्वयं देशबन्धु बिलासपुर आ रहे थे। किन्तु कौन्सिल में अकस्मात् एक ऐसा कार्य निकल आया कि वे उद्घाटन के लिए नहीं आ सके। दास बाबू का तार मिलते ही संयोजक-समिति ने निश्चय किया कि इस कार्य को और आगे न बढ़ाया जाए और देशबन्धु चितरञ्जनदास के स्थान पर अनन्तपुर के देशभक्त वकील यशवन्तराव को निमंत्रित किया जाए। जो लोग देशबन्धु के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे उन्हें बड़ी निराशा हुई किन्तु जो लोग कुछ काम करना चाहते थे उनमें काफ़ी उत्साह था।

निश्चित समय पर यशवन्तराव अपने प्राईवेट सेक्रेटरी कृष्णचन्द्र के साथ बिलासपुर स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर नागरिकों की अच्छी खासी भीड़ थी। बहुत से लोगों को यह सूचना ही नहीं मिली थी कि दास बाबू नहीं आ रहे हैं अतः वे उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर पहुँचे थे। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि दास बाबू नहीं आ रहे हैं तो वे भी यशवन्त के स्वागत-समारोह में शामिल हो गये। स्टेशन पर उतरते ही यशवन्तजी का गला हारों से लद गया। महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, चितरंजनदास और अली बन्धुओं के जयकार से स्टेशन गूँज गया। बीच बीच में एक-दो कण्ठों से यशवन्तराव की जय भी निकल जाती थी। इस ध्वनि को सुन कर यशवन्त की छाती फूल उठती थी। इनके जीवन में इतने बड़े समारोह का यह पहला अवसर था, जिसका स्वप्न वर्षों से देखा जा रहा था। जिसके लिए उन्हें अपनी वकालत को तिलांजलि देनी पड़ी, वही दिन परमेश्वर की कृपा और दास बाबू की

विवशता के कारण आ गया। वे भूख-प्यास भूल गये। प्रातःकाल यशवन्त को चाय पीने की आदत थी। प्राईवेट सेक्रेट्री ने दो-तीन कार्यकर्त्ताओं से चाय लाने के लिए कहा भी किन्तु वे सब ऐसे चम्पत हुए कि फिर दिखाई नहीं दिये। प्राईवेट सेक्रेट्री एक अन्य कार्यकर्त्ता से चाय की फर्माइश करनेवाले ही थे कि यशवन्त ने कान में धीरे से कहा—

"रहने भी दो चाय-वाय। लोग क्या समझेंगे ? आज एक दिन बगैर चाय के गुजारा कर लिया जायगा।"

यशवन्तराव नेताओं की प्रथम श्रेणी में नहीं पहुँचे थे।

× × × ×

चार घोड़ों की बग्गी में बैठा कर यशवन्तराव का जुलूस निकाला गया। मार्ग पर दोनों ओर जनता जमा थी। नेताओं के नाम ले ले कर जनता नारे लगा रही थी। जनता को क्या मालूम था कि गाड़ी में कौन बैठा है ? और उसे मालूम करने की जरूरत ही क्या थी ? वह केवल इस दृश्य को देख कर सन्तुष्ट थी कि—एक बग्गी चल रही है, जिसमें फूलों से लदा एक आदमी बैठा है और बग्गी के आगे-पीछे स्वयंसेवकों की कतारें चल रही हैं।

जुलूस बारह बजे सभा-स्थल पर पहुँचा। यशवन्तराव ने अपने जोरदार भाषण में बताया कि किस तरह काँग्रेस ने असहयोग करके नौकरशाही को परास्त किया। श्रोता लोग गद्गद् हो गये। पूरे एक घण्टे तक यशवन्त भाषण देते रहे और जनता बीच बीच में तालियाँ बजा कर उनका समर्थन करती रही।

भाषण समाप्त हुआ। सभा के अध्यक्ष वक्ता को धन्यवाद दे कर चले गये। मई का महीना। बाहर तेज धूप थी। श्रोताओं को भूख सता रही थी अतः वे एक-एक करके खिसक गये। सभा के संयोजक भी 'अभी आया' कह कर जो गये तो फिर लौटे नहीं। थोड़े से विद्यार्थी नेताजी के हस्ताक्षर ले रहे थे किन्तु वे भी अपना काम पूरा करके जा रहे थे। स्टेज पर यशवन्त और उनके प्राईवेट सेक्रेटरी के सिवाय कोई नहीं था। हाँ नीचे कुछ मजदूर शतरंजी इकट्ठी कर रहे थे।

"इस गाँव के लोग बड़े विचित्र हैं, कोई खोज खबर ही नहीं लेता। क्या किया जाए?" अन्त में धैर्य छोड़ कर यशवन्त ने कृष्णचन्द्र से प्रश्न किया।

"मैं वसन्तपुर में ऐसी ही घटना देख चुका हूँ, इसलिए चलते समय कुछ पैसे जेब में रख लिये थे। चलिये किसी होटल में चल कर कुछ नाश्ता कर लें। सायंकाल आपको फिर तिलक चौक में भाषण देना पड़ेगा।" कृष्ण-चन्द्र ने सुझाया।

"अच्छा हुआ दास बाबू नहीं आये। आते तो उनकी भी यही दुर्गत बनती। न जाने वे क्या समझते। चलो किसी होटल में ही चलें।" ठण्डी साँस ले कर यशवन्त ने कहा।

"दास बाबू की बात छोड़िये वकील साहब। अगर वे आतें तो अध्यक्ष, मंत्री और कोषाध्यक्ष में होड़ लग जाती। भाषण से पहले एक के घर चाय की व्यवस्था होती, सभा के उपरान्त दूसरे के घर सहभोज होता और सायंकाल की सभा में जाने से पहले तीसरे के यहाँ जलपान कराया जाता तथा सभा के बाद रात को जोरदार दावत दी जाती। उच्च-श्रेणी और मध्यम श्रेणी के नेताओं में यही तो अन्तर है। जो लोग स्वयंसेवक हैं उनके लिए भी कहीं प्रबन्ध होगा। पूछ नहीं होती तो केवल मध्यम श्रेणी के नेता की। यह पेशा ही ऐसा है।" कृष्णचन्द्र ने व्यंग के साथ कहा।

"क्या कहते हो कृष्णचन्द्र? क्या यह कोई पेशा है? देश-सेवा में तो ऐसे अनेक कष्ट सहने ही पड़ेंगे। कभी समय पर भोजन नहीं मिला या मिला तो रूखा-सूखा, इससे क्या होता है?" यशवन्तराव ने कहा।

दोनों सभामण्डप से निकल कर सड़क पर आगे बढ़े, उसी सड़क पर जिससे कुछ देर पहले यशवन्तजी फूलों में लदे बग्गी में आये थे। वे लोग होटल की तलाश में इधर उधर देख ही रहे थे कि एक स्वयंसेवक ने उन्हें पहचान लिया। उसने प्रश्न किया—

"आप लोग किधर जा रहे हैं?"

"किसी होटल की तलाश है।" कृष्णचन्द्र ने कहा।

"ओह ! आप लोगों को होटल कैसे मिलेगा। यहाँ निकट में कोई होटल नहीं। चलिये मैं आपको होटल तक पहुँचा देता हूँ।" स्वयं सेवक ने इन दोनों को यह कह कर अपने साथी के कान में कुछ कहा और साथी सुनते ही दौड़ कर गली में ओझल हो गया।

बीस मिनट तक कड़ी धूप में चलने के बाद ये लोग होटल के दरवाजे पर पहुँचे ही थे कि स्वागत-समिति के मंत्री श्री भिक्खूलाल आते दिखाई दिये। उन्होंने आते ही कहा—

"मुझे बहुत खेद है। मैंने समझा था प्रधान जी आपके साथ होंगे। अच्छा हुआ जो स्वयंसेवक ने आ कर मुझे सूचना दे दी नहीं तो आपको बहुत तकलीफ होती।"

"आपका स्वयंसेवक काफी होशियार मालूम होता है।" यशवन्त ने कहा।

इस प्रशंसा से खुश हो कर मंत्री बोला—"हाँ हाँ, होशियार तो होना ही चाहिए। चलिये भण्डार में भोजन कर लीजिये। सन्ध्या का प्रबन्ध अलहदा किया गया है। अध्यक्ष जी से बहुत बड़ी गलती हो गई। मैं उनकी ओर से आप से क्षमा चाहता हूँ।"

क्षमा की क्या बात है भिक्खूलाल जी ? मुझे तो कार्यकर्त्ताओं के साथ भोजन करने में आनन्द मिलता है।" यशवन्त ने सन्तोष के स्वर में कहा।

भण्डार यहाँ से बीस कदम पर था। यशवन्त और कृष्णचन्द्र को एक गद्दी पर बैठाया गया जिसके आजू-बाजू दो तकिये लगे हुए थे। बरामदे का मुँह पश्चिम की तरफ था अतः सूरज की पूरी धूप अन्दर आ रही थी। पिछली खिड़की से रसोई घर का धुआँ और छौंक की गंध बरामदे में आ कर भर रही थी। दिन भर के भूखे-थके यशवन्त और कृष्णचन्द्र को यह बरामदा भी आरामदेह मालूम हुआ।

भिक्खूलाल अन्दर जा कर बाहर लौटे और बोले—

"सब कार्यकर्त्ताओं के लिए केवल दाल-रोटी की व्यवस्था थी। आप लोगों के लिए बाजार से कुछ मीठा और दही तथा आचार मँगाया है। थोड़ी

देर तो होगी, किन्तु मुझे आशा है आप क्षमा कर देंगे।"

"मंत्रीजी, आप बार बार क्षमा की बात कह कर हमें यों ही लज्जित कर रहे हैं। अभी तो केवल ढाई बजे हैं और शाम की सभा पाँच बजे है। पाँच बजे तक भोजन हो जाए : आप किसी बात की चिन्ता मत कीजिये।" कृष्णचन्द्र के स्वर में थोड़ा व्यंग था।

आधा घण्टा बीत गया किन्तु बाजार से कोई नहीं लौटा। अन्त में कृष्णचन्द्र ने मंत्री से पूछा—

"मंत्रीजी, मीठा-वीठा रहने दीजिये। समय बहुत हो रहा है। भोजन के बाद वकील साहब कुछ आराम भी करेंगे अन्यथा सायंकाल की सभा में रंग नहीं जमेगा।"

"थोड़ा और धैर्य रखिये। आप लोग दक्षिण से आये हैं। आप लोगों के लिए थोड़ा भात भी बनवाया है। केवल दस मिनट प्रतीक्षा कीजिये।"

"बस भी कीजिये मंत्रीजी। जो कुछ हो, परसवा दीजिये। हम लोग भोजन करते हैं। अगर इस बीच बाजार से चीजें आ गईं तो उनका भी उपयोग हो जायगा। भात भी पक जाएगा।" इस बार कृष्णचन्द्र के स्वर में थोड़ा रोष था।

"यदि आपका यही विचार हो तो फिर चलिये।" मंत्री के स्वर में विवशता थी।

दोनों के आगे थालियाँ रखी गईं। थाली में दाल और दो-दो रोटियाँ परोसी गई। जब रोटी समाप्त हो गई तो भिक्खूलाल ने रसोइये से भात लाने के लिए कहा। रसोइये ने अन्दर से आवाज दी—

"अभी पका नहीं है। जरा बैठिये।"

"भात की कोई जरूरत नहीं। हमें रोटी खाने की आदत है। भात से किसी दूसरे का काम चल जायगा।" कृष्णचन्द्र ने उद्विग्नता से कहा।

थालियों में रोटी परोसी गई। दोनों ने छक कर भोजन किया। इतने में मोहन ने आ कर सूचना दी—"गाड़ी आ गई है।"

"काहे के लिए?" भिक्खूलाल ने पूछा।

"संभवतः मिठाई खाने के लिए हमें बाहर चलना है।" कृष्णचन्द्र ने अनुमान लगा कर कहा।

"नहीं बाबूजी! तिलक चौक की सभा का समय हो गया। प्रधानजी ने आप लोगों को सभा तक आने के लिए गाड़ी भेजी है।"

घर का चोर

"ओ मुन्नी की माँ !" गोकुलदास ने बरामदे से आवाज दी।

"जी !" अन्दर से आवाज आई।

"अजी, निकलती हो कि अन्दर से ही जवाब दोगी।" गोकुलदास ने परेशान हो कर कहा।

"अभी आती हूँ। इतनी जल्दी भी काहे की है। अभी तो सूरज भी नहीं उगा और सरजू के घर शादी भी तो साढ़े सात बजे है।" अन्दर से पत्नी ने कहा।

"हूँ ! सूरज नहीं उगा अभी। जानता हूँ लग्न साढ़े सात बजे है लेकिन साढ़े तीन मील का रास्ता जो तय करना है।" बाहर से पति बोले।

"साढ़े तीन मील का रास्ता है तो क्या हुआ ? पैदल थोड़े ही चलना है। गाड़ी तैयार खड़ी होगी।"

"लेकिन जरा पहले पहुँचने में हानि क्या है ?"

"अच्छा बाबा, अभी आई। केवल पायजेब पहनने रह गये हैं।"

"समझ में नहीं आता, दूसरे की शादी में तुम्हें इतना क्यों सजना चाहिए ?"

"वाह आप ही ने तो गहने पहनने के लिए कहा था ।"

"मैंने क्या इतनी सजावट के लिए कहा था ?"

अब पत्नी से नहीं रहा गया । वह पायजेब हाथ में लिये वाहर निकल आई । वोली—

"फिर कितनी सजावट के लिए कहा था ?"

"मैं इतना वितना नहीं जानता । आभूषण पहन कर अपने को दिखाना महिलाओं का स्वभाव है । किसी ने सच कहा है औरतें सजावट के लिए नहीं दिखावट के लिए गहने पहनती हैं ।" गोकुलदास ने व्यंग कसा ।

"क्या कहते हैं आप ?" पत्नी के स्वर में क्षोभ था ।

"अरे तुम्हारे लिए थोड़े ही कह रहा हूँ ।" गोकुलदास ने पैंतरा वदला । "वह है न वावू की माँ । उसकी नाक घोड़े के नथनों जैसी है लेकिन वह अपनी उसी नाक में नथ जरूर पहनेगी । चिड़िया के कान भी वड़े होंगे लेकिन उसके कान कितने छोटे हैं ? वह अपने उन छोटे-छोटे कानों में वड़े-वड़े कर्णफूल जरूर पहनेगी । गर्दन का पता ही नहीं चलता । धड़ और सिर के वीच का अन्तर ही नहीं दिखाई देता । लगता है जैसे फुटवाल पर लट्टू रख दिया गया हो । लेकिन वह चन्द्रहार पहनना नहीं भूल सकती । खोपड़ी पर वाल इतने छिदे-छिदे हैं जैसे चन्द्रमा के काले धव्वे लेकिन क्या मजाल चन्द्रकान्त पिरोना छूट जाये । उँगलियाँ ऐसी जैसे गाजर की ठूँठ, एक तरफ पतली तो दूसरी तरफ मोटी, लेकिन हर हाथ में दो दो अँगूठियाँ जरूर पहनती है । कलाई में सोने के कड़े ऐसे लगते हैं जैसे कुत्ते के गले कँगन लटकाया गया हो । वावू की माँ को ये गहने सुन्दर नहीं वनाते वल्कि उसकी असुन्दरता को ही उभारते हैं । लेकिन वह जेवर पहनती है, इसलिए कि वह चाहती है लोग उसे देखें ।"

"वस वस रहने भी दो । दूसरे की वहू-वेटियों को इतना क्यों ताकते हो ? दूसरे की वहू-वेटियाँ क्या पहनती हैं, कैसी लगती हैं इससे तुमको मतलव ?

इस तरह तुम दूसरी औरतों को क्यों तकने लगे हो जी ?"

"अरे रे, तुम तो नाराज हो गईं। मेरी बात तुमने समझी ही नहीं, मैं क्या किसी को बुरे भाव से देखता हूँ। मैं तो इतना ही कह रहा था कि वह दिखावट के लिए गहना पहनती है।" पति ने रूठी पत्नी को मनाते हुए कहा।

"मैं भी यही मानती हूँ कि स्त्री दिखावट के लिए गहना पहनती है। किन्तु किसकी दिखावट के लिए ? क्या अपने शरीर की दिखावट के लिए ? नहीं, वह तो सरूप-कुरूप जैसा है, ईश्वर का दिया हुआ है। दिखावट है पति की कमाई की। स्त्री के गहनों को देख कर ही लोग उसके पति की प्रतिष्ठा का, उसके सामाजिक गौरव का अन्दाजा लगाते हैं। यदि आपको मेरे गहने पसन्द नहीं हैं तो उतारे देती हूँ।"

"बस अब पहने भी रहो। सब कुछ ठीक है। उतारने बैठोगी तो और देर हो जायगी। औरतों का बाहर निकलना भी कोरिया की चढ़ाई की तैयारी से कम नहीं। घण्टों निकल जाते हैं।"

किसी तरह दोनों गाड़ी के पास पहुँचे। पहले सुन्दरबाई गाड़ी पर सवार हुई। बाद में सेठजी। कोचवान को आदेश दिया गया कि सुलतानबाजार में सरजू के मकान पर चलना है। जब अपनी गली को पार करके सेठजी सड़क पर पहुँचे तो उन्हें भी अनुभव हुआ जैसे वे अकारण ही घर से जल्दी चल पड़े। पत्नी से बोले—

"अरे, तुम सच कहती थीं, अभी बहुत समय है। इतनी जल्दी जा कर वहाँ क्या करेंगे ?"

"आप लोग औरतों को तो निरा बुद्धू समझते हैं। उसकी एक बात नहीं मानते। अब करेंगे क्या ? बागेआम चले चलें। सुबह का समय है। भीड़ भी अधिक नहीं होगी।"

सेठ ने पत्नी का प्रस्ताव मान कर कोचवान को बागेआम ले चलने का आदेश दिया। बागेआम पहुँच कर दोनों पति पत्नी नीचे उतरे और रास्ते से कुछ हट कर इधर-उधर टहलने लगे।

"कितना अन्तर है" — सेठजी ने अपनी पत्नी से कहा—"केवल पचास कदम उधर, बगीचे की दीवार के बाहर, इतनी सबेरे भी मनुष्य समुदाय इधर से उधर आता-जाता दिखाई देता है। शान्ति का कहीं नाम नहीं। किन्तु पचास कदम इधर, बगीचे की दीवारों के अन्दर कितनी शान्ति है। वृक्षों और झाड़ियों और पौधों और घास के सिवाय यहाँ कोई नहीं। ये वृक्ष और ये झाड़ियाँ न जाने कितने वर्षों से यहाँ खड़े हैं। ये प्रसन्न हैं, सन्तुष्ट हैं, न तो कोई दूसरों से आगे बढ़ना चाहता है और न किसी के मन में किसी को पीछे धकेलने की इच्छा है। यहाँ आते ही जैसा हमारे मन में शान्ति छा जाती है।"

"सच कहते हैं। ऐसा लगता है जैसे हम लोग शहर से दूर, विन्ध्याचल के एकान्त वन में घूम रहे हैं।" पत्नी ने हाँ में हाँ मिलाई।

"इसी को तो योगावस्था कहते हैं।" सेठजी को जैसे शह मिल गई। "योगी लोग दुनिया में रह कर भी दुनिया के बाहर विचरण करते हैं। उनकी ऐसी ही अवस्था होती है जैसी हैदराबाद में रह कर भी इस समय हमारी है। स्थान और काल के कारण ही ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। थोड़ी देर के बाद तुम्हें यह स्थिति बिल्कुल बदली हुई मालूम होगी।"

इस बार सुन्दरबाई चुप रही। वह इस गूढ़ बात को अच्छी तरह समझ भी नहीं पाई थी, क्या कहती।

इसी समय दो युवक सामने से आते दिखाई दिये। दोनों के पास साइकिल थी। उनके चेहरों पर काला बुर्का पड़ा था। आँखों के आगे दो छेद थे। देखते ही सुन्दरबाई घबरा कर चिल्लाई —

"हाय चोर!"

दोनों युवकों ने स्टैण्ड पर साइकिलें खड़ी कीं और रिवाल्वर दिखाते हुए जोर से बोले —'चुप रहो' पल भर में वे दोनों सेठ और सेठानी के पास खड़े थे। रिवाल्वर तानते हुए एक ने कहा—

"चुपचाप खड़े रहो। जरा भी गड़बड़ की तो गोली चलती है। छाती छलनी हो जाएगी।"

सुन्दरबाई के होश-हवास समाप्त हो गये थे। सेठ ने धीरज के साथ दोनों हाथ ऊपर उठा दिये। वे बोले—"आप लोग हमें मत सताइये। आप चाहें तो मैं पाँच सौ रुपये अभी दूँगा। हम लोगों को जाने दो।"

"अबे उल्लू के बच्चे। इतने गहने छोड़ कर तेरे पाँच सौ रुपये कौन लेगा ?" सेठानी के गहनों पर नजर गड़ाते हुए एक ने कहा।

"अच्छा तो हजार रुपये ले लो। इन जेवरों में क्या रखा है। सब नकली हैं। और बेचने जाओगे तो पकड़े जाओगे। नगद ले लो। हम गरीबों को सताओ मत।'

"हम आप लोगों को कोई कष्ट नहीं देंगे। पाँच मिनट चुपचाप खड़े रहो।"

एक युवक ने कहा—

"नम्बर दो, मैं गहने उतारता हूँ तुम सावधानी से चारों तरफ दृष्टि रखो। कोई आता तो नहीं है।"

ज्यों ही नम्बर दो ने सेठानी की तरफ हाथ बढ़ाया सेठजी उस हाथ को हटा कर बोले—"आप लोग ऐसा मत कीजिये। मेरी स्त्री को हाथ मत लगाइए। मैं स्वयं पूरे गहने उतार दूँगा।"

"ऐसा ही सही जल्दी करो।" नम्बर दो ने कहा।

"क्विक्" नम्बर एक ने कहा।

"बड़ा बुरा समय है। जान के लाले पड़े हैं। सब गहने दे दो इन लोगों को। जान बचेगी तो फिर बन जाएँगे।" सेठजी बोले।

सेठानी अहल्या की तरह पत्थर बन चुकी थी। सेठ ने एक एक करके पूरे गहने उतारे और नम्बर १ के हवाले कर दिये। दोनों युवक अपनी अपनी साइकिल पर सवार हो कर अदृश्य हो गये। सब कुछ पाँच मिनट में हो गया। थोड़ी देर में सुन्दरबाई होश में आई। उसने अपने हाथों की तरफ देखा। कानों को टटोला। गले को छुआ और ठण्डी साँस लेती हुई बोली—

"ले गये ? सब जेवर ले गये ? चलो खैर हुई। कहीं तुमको चोट ओट तो नहीं आई ?"

"चोट क्यों आती ? मैंने स्वयं सारे गहने उतार दिये। तुम्हारे शरीर को

हाथ तक लगाने नहीं दिया, फिर वे क्यों मारते ?"

"अच्छा किया नाथ, आपने बहुत अच्छा किया। तुम्हारी जान बची और मेरी आन रह गई। चलो अब वापिस चले चलें।" एक ठण्डी साँस भर कर सुन्दरबाई ने कहा।

गोकुलदास और सुन्दरबाई लग्न में नहीं गये। अपने घर लौट आये।

× × × ×

पुलिस को सूचना दी गई। इन्स्पेक्टर ने सेठ और सेठानी के बयान लिये। सेठ ने बयान पर हस्ताक्षर और सेठानी ने अंगूठा किया। पूरे गहनों की एक सूची तैयार की गई। इन्स्पेक्टर उन्हें घटना स्थल पर साथ ले गया। दोनों चोर कहाँ खड़े थे, साइकिलें कहाँ खड़ी की गई ? सेठ और सेठानी कहाँ थे। दोनों में कितना अन्तर था। चोरों और सेठानी में कितना अन्तर था ? इन प्रश्नों का उत्तर देते देते सेठ तंग आ गये। उसने कहा,—

"मेरी समझ में नहीं आता इन सब बातों से क्या लाभ होगा ? चोर कहाँ खड़े थे, हम लोग कहाँ खड़े थे यह सब जान लेने से चोर कैसे पकड़े जा सकते हैं ?"

"आप जरा धीरज रखिये सेठजी। इन बातों से आपको क्या ? चोर जल्दी ही पकड़ लिया जायगा और आपका माल आपको मिल जाएगा।"

"माल क्या खाक मिलेगा साहब। आप तो यों ही बेकार की बातों में समय बिता रहे हैं।" सेठ ने जरा असन्तुष्ट हो कर कहा।

"सब कुछ ठीक हो जाएगा। आप लोग अब अपने घर जाइये। इन्स्पेक्टर ने सान्त्वना देते हुए कहा।

इन्स्पेक्टर और उसका अफसर दोनों फाईल पर विचार कर रहे थे। फाईल में पंचनामे और सेठ-सेठानी के बयान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। पन्नों को उलट-पुलट कर कोशिश की जा रही थी कि कहीं पकड़ मिल जाए। बारबार कागजों की उलट-पुलट हो रही थी।

"ऐसा बेसिर पैर का मामला आज तक मेरे सामने नहीं आया।" अफसर ने कहा।

"समझ में नहीं आता सेठानी किसी परिचित के घर विवाह में जाते समय पूरा जेवर क्यों पहन कर गई ?" इन्स्पेक्टर ने कहा ।

"हाँ बात समझने लायक है ।" अफसर बोला ।

"दूसरी बात यह समझ में नहीं आती कि चोर ठीक समय पर बाग में क्यों पहुँचे । उन्हें इसका पता कैसे चला कि सेठानी इतने गहनों के साथ उस समय वहाँ मिलेगी । बाग में जाने का उनका कार्यक्रम तो नहीं था ।"

"भाग्य उनका ।" अफसर ने कहा ।

"जेवर भी सेठ ने स्वयं उतार कर दिये अन्यथा सेठानी के हाथ पर चोरों का फिंगर प्रिंट (अंगुलियों के निशान) रहते और चोरों को पकड़ने में सहायता मिलती ।"

"यह बुद्धि सेठ में कहाँ से आती ?"

"फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं साहब ।" इन्स्पेक्टर ने कहा । आपके आदेशानुसार मैंने जौहरियों को गहने की सूची दे दी है । उनसे कह दिया गया है कि जेवर बिकने आएँ तो शीघ्र ही पुलिस को सूचना दे दी जाए । यदि चोर नया है तो जल्दी ही गठेगा ।"

जब पुलिस के दो अधिकारी इस तरह समस्या को हल करने में लगे हुए थे, टेलीफोन की घंटी बजी । रिसीवर को उठा कर पुलिस अधिकारी ने पूछा—"हलो ! पुलिस कचहरी ।"

उन्हें सुनाई दिया—"एक व्यक्ति सेठ के पूरे जेवर ले कर बेचने आया है ।" पुलिस अधिकारी ने कहा—"पक्का गधा मालूम होता है । उसे कुछ देर उलझाये रखिये । मैं सिपाहियों के साथ अभी आता हूँ ।"

पुलिस अधिकारी चार सिपाहियों और इन्स्पेक्टर के साथ मोटर में बैठे और मुकुन्ददास की दूकान पर पहुँचे । पुलिस अधिकारी को यह जान कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि सेठ गोकुलदास स्वयं अपने जेवरों की गठरी लिये बैठे हैं । जब गोकुलदास ने उस अधिकारी को देखा तो उसके आश्चर्य का भी ठिकाना नहीं रहा वे भय और लज्जा के मारे सिर नीचा किये सीधे खड़े हो गये ।

"बैठो सेठ । मैंने तो सुबह ही कह दिया था कि चोर के मिलने में देर

नहीं होगी ।" अधिकारी ने कहा ।

"आपकी बात तो सच निकली लेकिन मैंने यह नहीं सोचा था कि सेठ मुकुन्ददास मेरे साथ घात करेंगे । गोकुलदास ने कहा ।"

"जो हुआ सो हुआ, अब हम आपको गिरफ्तार करते हैं ।" पुलिस अधिकारी ने कहा ।

तुरन्त गोकुलदास को हथकड़ी पहना कर थाने ले जाया गया ।

× × × ×

थानें पहुँच कर गोकुलदास ने बयान लिखाया -- "शनिवार की घुड़दौड़ में मैं बीस हजार रुपये हार गया था । मेरे लिए इसके सिवाय कोई चारा नहीं था कि मैं पत्नी के जेवर बेच कर पैसे भरूँ । पत्नी से जेवर माँगना व्यर्थ था । औरत अपने प्राण दे सकती है किन्तु जेवर नहीं दे सकती । इसीलिए मैंने यह षड्यन्त्र रचा । मैंने अपने रसोइये शम्भू और भोई (टहलुआ) नरसू को पाँच पाँच सौ रुपये दे कर चोर बनने के लिए तैयार किया । अधिक कहने से क्या लाभ ? जेवर मेरे हैं । चोर भी मैं ही हूँ । चाहे तो मुझे दण्ड दो, चाहे क्षमा कर दो । शम्भू और नरसू बिल्कुल निर्दोष हैं । उन्हें अभी पुरस्कार भी नहीं मिला । जेवर बिकने के बाद ही मैं उन्हें कुछ दे सकता था ।"

धर्मशाला

रामनगर दिल्ली-कलकत्ता लाइन पर एक छोटा-सा गाँव है। डेढ़ सौ घर होंगे। जन संख्या लगभग एक हजार। रास्ते साफ-सुथरे। गाँववालों ने गाँव के बाहर एक प्रारंभिक पाठशाला बनाई है। आस-पास से पाँच छः गाँवों के लड़के इसी पाठशाला में पढ़ने आते हैं। पास ही एक दवाखाना है। दवाखाने से हट कर छोटा सा पुस्तकालय और वाचनालय है। इस छोटे से गाँव में इन सब बातों को देख कर किसी को भी आश्चर्य हो सकता है। प्रकृति ने भी इस गाँव की शोभा बढ़ाने में हाथ बटाया है। गाँव के उत्तर में एक छोटी नदी बहती है जिसमें बारहों महीने पानी रहता है। इस नदी के पानी को एक जगह इस तरह रोका गया है कि गाँव वाले अपने खेतों की सिंचाई कर सकें। दक्षिण की तरफ ऊँची पहाड़ी है जिस पर सदा हरियाली छाई रहती है। पहाड़ी की तराई में अच्छा खासा उपवन बन गया है। जगह जगह अमराइयाँ हैं जहाँ ग्रामवासी दो पहर के समय थकान मिटाते हैं।

स्टेशन के पास एक बड़ी धर्मशाला है। धर्मशाला की विशालता को

देख कर दर्शक के मन में अवश्य यह प्रश्न उठेगा कि इस छोटे से गाँव में इतना बड़ा भवन कैसे बना होगा। पूछने पर यहाँ के चपरासी से मालूम हुआ कि यह सब नन्दलाल जी का प्रताप है। नन्दलाल जी शान्ति-समाज के मंत्री हैं। यदि उन्होंने कोशिश न की होती तो यहाँ एक कोठरी भी नहीं बनती।

यह स्वाभाविक था कि इतना सुन कर मेरे मन में नन्दलाल जी से मिलने की इच्छा हो। मैंने सोचा, वे यहाँ के कोई बड़े व्यापारी होंगे। किन्तु पता चला, ऐसी कोई बात नहीं है। वे रामनगर के ही निवासी हैं। आयु लगभग तिरसठ वर्ष की है। प्राथमिक पाठशाला में मुख्याध्यापक थे, इस समय पच्चीस रुपये मासिक पेन्शन पाते हैं। हाँ, इस समय उनके दोनों बेटे सरकार में ऊँचे पदों पर हैं।

मैं नन्दलाल जी के पास गया। श्रद्धा से प्रणाम करके मैंने उनसे कहा—

"नन्दलाल जी आपका जीवन धन्य है। आपने इस गाँव को सचमुच रामनगर बना दिया। आपके दर्शन करके मुझे बड़ा आनन्द हुआ।"

"मैंने कुछ भी नहीं किया श्रीमान् जी! यह सब जनता की मूर्खता और धूर्तों की चतुराई का फल है। यदि आप इस उन्नति का मूल कारण सुनेंगे तो आप को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा। धर्मशाला के बनाने में एक फूटी कौड़ी खर्च नहीं हुई। हाँ, इसके तुफैल से प्राथमिक पाठशाला, पुस्तकालय और वाचनालय भी बन गये। हम भी प्रधानाध्यापकी करते रहे और अब मजे से जिन्दगी बिता रहे हैं।"

यह सुन कर मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई। मैंने कहा—"यदि आपको कष्ट न हो तो मैं सभी बातें विस्तार से सुनना चाहता हूँ।"

"अजी, इसमें कष्ट की क्या बात है? मैंने यह कहानी न जाने कितनों को सुनाई है। यदि जीवन बना रहा तो और भी कइयों को सुनाऊँगा। हर बार मुझे यह कहानी बिल्कुल नई मालूम होती है—

लगभग चालीस वर्ष हुए। यह गाँव उस समय इतना बड़ा नहीं था। गाँव के युवकों ने मिल कर शान्ति समाज स्थापित किया। हम इस समाज में कथा-कहानी कहा करते और भजन गाते थे। कभी कभी बाहर से आनेवाले

किसी विद्वान का भाषण भी हो जाता था। उन दिनों यहाँ वैसाखी का बड़ा भारी मेला भरता था। मेला तीन दिन तक रहता था। दूर दूर के लोग आते थे। यह स्वाभाविक था कि बाहर से आने वाले लोगों में से कुछ बीमार पड़ जाएँ। बाहर से आने वालों के ठहरने या बीमारों को रखने के लिए यहाँ कोई जगह नहीं थी। इसीलिए शान्ति-समाज के सदस्यों ने एक धर्मशाला बनाने का निश्चय किया।

निश्चय करना एक बात है और उसके अनुसार काम करना दूसरी बात। दो वर्ष तक हम लोगों ने गाँव वालों को धर्मशाला की आवश्यकता समझाई। लोगों से दान माँगने की कोशिश की किन्तु हमें जरा भी सफलता नहीं मिली। इस पर हमारे एक साथी ने जनता के अन्ध-विश्वास से लाभ उठाने का निश्चय किया। अब तक हमारे पास जो पैसा जमा हुआ था उससे स्टेशन के पास एक बावड़ी खुदाई गई। बावड़ी का नाम वैतरणी रखा गया। धर्मशाला के आँगन में वह बावड़ी इस समय भी है, किन्तु पहले उस बावड़ी का रूप ऐसा नहीं था। सिर्फ एक गढ़ा भर खोदा गया था। जब उस गढ़े में पानी आ गया तो हम तीन मित्र रामनगर से पाँचवें स्टेशन का टिकट ले कर कलकत्ता मेल में सवार हो गये। हम तीनों एक ही डिब्बे में चढ़े किन्तु साथ साथ नहीं बैठे। हमारा एक साथी मुझ से थोड़ी दूर बैठा था और दूसरा साथी दूसरी ओर खड़ा हो गया। मैंने बीमार का स्वांग भर रखा था। धीरे-धीरे स्थान बनाता मैं अपने बैठे हुए साथी के पास पहुँचा। मुझे देख कर साथी ने आश्चर्य से कहा—

"अरे आप नन्दलाल जी हैं क्या? आपकी यह क्या हालत हो गई? मालूम होता है आप बीमार हैं। आइये इधर बैठिये।" साथी ने थोड़ी जगह बनाई। मैं बैठ गया। मेरे मित्र ने फिर कहा—

"कहो क्या हाल है? कब से बीमार हैं आप? चेहरा कैसा पीला पड़ गया है!"

"क्या कहूँ रामलाल जी।" मैंने कम्पित स्वर में बोलने की चेष्टा की— "तीन महीने से हल्का बुखार रहता था। आगरे के सभी डाक्टरों को बता

चुका। कोई कहता था तपेदिक है, कोई टाइफाइड बताता। इन्जेक्शनों के मारे शरीर छलनी हो गया। परमेश्वर की दया हुई। एक दिन एक साधु भिक्षा माँगते हमारे घर आये। मेरी हालत देख कर बोले—आप यदि जीवन से निराश हो गये हैं तो रामनगर क्यों नहीं चले जाते। वहाँ एक बावड़ी है। उसके जल से तीन बार आचमन करके यदि सुबह-शाम सात-सात बार बावड़ी की प्रदक्षिणा की जाए तो आपका बुखार दूर हो जाएगा। तीन दिन से चौथा दिन नहीं होगा।"

"मैं साधुजी की बात मान कर रामनगर चला गया। क्या कहूँ राम-लाल जी। वहाँ तीसरे दिन मेरा बुखार नार्मल हो गया। आपको विश्वास न हो तो प्रभुदयाल जी से पूछ लीजिये।"

मैंने अपने साथी प्रभुदयाल की ओर इशारा किया जो दूसरी तरफ खड़े थे।

"बिल्कुल सही है रामलाल जी! आप स्वयं देख लीजिये बुखार का जरा सा अंश भी नहीं है। पानी में क्या प्रभाव है। फिर यह विशेषता है कि बीमार को किसी तरह का पथ्य नहीं करना पड़ता।"

प्रभुदयाल ने मेरी बात का अनुमोदन किया।

रामलाल तो चुपचाप बैठे रहे किन्तु एक दूसरे यात्री ने मेरी कलाई अपने हाथ में ले कर नब्ज टटोली। वह नब्ज देख कर जोर से चिल्लाया—"सचमुच इनका बुखार उतर गया है।"

धीरे धीरे मेरे बुखार और उसके उतरने की कहानी एक से दूसरे के कान पर होती हुई पूरे डिब्बे में फैल गई। कुछ लोग मेरे पास आये और सन्देह दूर करके अपनी अपनी जगह चले गये। कुछ ने अपनी डायरी में रामनगर का पूरा पता लिख लिया। एक ने प्रश्न किया—"क्या वहाँ केवल बुखार ही उतरता है या दूसरे रोग का भी इलाज होता है?"

प्रभुदयाल ने दूर ही से इस जिज्ञासू को बताया—

"वहाँ सभी तरह के बीमार आते हैं। जब हम लोग वहाँ थे तो दो हृदय-रोग के और तीन चर्म-रोग के रोगी आये हुए थे। पाँचों अच्छे हो गये।

सुनते हैं हमसे पहले वहाँ कई दीवाने भी आये और अच्छे हो कर चले गये।"

प्रभुदयाल की बात को डिब्बे के सभी यात्रियों ने सुना। प्रभुदयाल प्रायः सभी की जिज्ञासा शान्त कर रहे थे। वैतरणी के बारे में लोगों की उत्सुकता बढ़ती ही जा रही थी।

तीसरे स्टेशन पर हम तीनों एक दूसरे डिब्बे में चले गये। वहाँ फिर हमने वही नाटक किया। इस तरह जाते समय चार डिब्बों में यह स्वाँग रचा गया। रामनगर लौटते समय भी यही नाटक दुहराया गया। हम लोगों का अपना दैनिक कार्य हो गया था रोज शाम की गाड़ी से जाना और रात की आठ की गाड़ी से रामनगर लौटना।

× × × ×

हमारे प्रयत्नों का फल जल्दी ही निकला। हमारे देश में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं है जो इस तरह की बातों पर बड़ी आसानी से भरोसा कर लेते हैं। सात दिन बाद ही हम लोगों ने देखा, हमारे स्टेशन पर कुछ परदेशी लोग भी उतरे हैं। इस छोटे-से स्टेशन पर इसी गाँव के लोग उतरते हैं, जिनसे हम अच्छी तरह परिचित थे। इन अपरिचित लोगों को देख कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। पूछने पर मालूम हुआ, वे लोग मिर्जापुर और इलाहाबाद के हैं। वैतरणी के माहात्म्य को सुन कर चले आ रहे हैं। हम वैतरणी के पण्डे बने और इन लोगों को गाँव में ले गये। उन लोगों ने वैतरणी के जल से आचमन करके प्रदक्षिणा की। एक की बीमारी दूर हो गई। दो अपने भाग्य को रोते हुए चले गये। वैतरणी का माहात्म्य कम नहीं हुआ। छः मास में वैतरणी का माहात्म्य दूर दूर तक फैल गया। जो लोग अच्छे होते थे वे कुछ न कुछ मन्नत मानते थे। जोधपुर के मथुरादास सेठ की माँ वैतरणी में उतरते समय फिसल गई। सेठ ने प्रतिज्ञा की कि यदि माँ अच्छी हो गई तो वे इस बावड़ी को पक्का बनवा देंगे। उन्होंने इस बावड़ी को पक्का बनवाया। किसी ने मन्दिर बनवाया, किसी ने यज्ञशाला। एक-एक कमरा बनता गया। इस तरह यह धर्मशाला खड़ी हो गई। आगे चल कर कुछ नये विचार के लोग आने लगे तो उन्होंने पाठशाला और औषधालय तथा पुस्तकालय और वाचनालय बनवा

दिये। कहने का मतलब यह कि इन सब चीजों में गाँववालों का एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ। यह सब अन्धविश्वास का परिणाम है। अन्तर इतना ही है कि दूसरी जगह अन्धविश्वास से पण्डे-पुजारी लाभ उठाते हैं, यहाँ उसका लाभ पूरे गाँव को मिला है।

छुटकारा

नरसम्मा उस दिन भी नित्य की भाँति बर्त्तन साफ़ करने और घर बुहारने के लिए प्रातःकाल सुन्दरबाई के घर पहुँची, किन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने सुन्दरबाई का घर बन्द पाया। नरसम्मा सुन्दर के यहाँ दस वर्ष से नौकरी करती है। इन दस वर्षों में उसे एक दिन भी ऐसा याद नहीं जब सुन्दर उसके पहुँचने से पहले बिस्तर छोड़ कर स्नानादि से निवृत्त न हो चुकी हो। जब नरसम्मा घर में पहुँचती थी तो वह सुन्दर को तुलसी की प्रदक्षिणा करते या शिवस्तोत्र के पाठ में निमग्न पाती थी। सुन्दर प्रदक्षिणा या पाठ भी करती जाती और साथ ही नरसम्मा को आदेश भी देती जाती थी कि कौन-सा बर्त्तन कहाँ पड़ा है, साड़ी कहाँ सुखानी है और आँगन में किस जगह छिड़काव करके रंगोली भरनी है। नरसम्मा को काम करते-करते अभ्यास हो गया था कि कौन काम किस तरह करना है, किन्तु सुन्दर को भी प्रातःकाल ब्यौरेवार आदेश देने की आदत पड़ गई थी। सुन्दर मकान में अकेली थी इसलिए अपनी नौकरानी को दो-चार बातें सुना कर स्वयं को सामाजिक प्राणी

सिद्ध किया करती थीं। इसीलिए असाधारण रूप से आज मकान का दरवाज़ा बन्द देख कर नरसम्मा को बहुत आश्चर्य हुआ था।

नरसम्मा ने दरवाज़े के पास जा कर दो-तीन बार दस्तक दी। फिर दो-चार बार ज़ोर से मालकिन को बुलाया। इतने पर भी जब दरवाज़ा नहीं खुला तो वह सड़क की ओर मुँह करके सोचने लगी—न जाने क्या बात है, जो बाई अब तक सो रही हैं!

"नरसम्मा, खड़ी खड़ी क्या सोच रही हो? क्या सुन्दरबाई अब तक उठी नहीं?"

रास्ते से गुज़रनेवाले पड़ौसी ने सवाल किया।

"आज तक तो कभी ऐसा हुआ नहीं भैया! वे तो मेरे पहुँचने से पहले ही उठ जाती हैं।" नरसम्मा ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"मालूम होता है, रात देर से सोई हैं। थोड़ी देर में उठ जाएँगी। जल्दी क्या है? ठहर कर आ जाना।" राहगीर ने सुझाव रखा।

"पर भैया, यह नींद भी क्या नींद है जिसके आगे कुंभकर्ण की नींद भी मात हो रही है। मैंने किवाड़ खड़खड़ाये, आवाज़ें दीं, किन्तु अन्दर से कोई जवाब ही नहीं मिलता।"

इतना कह कर नरसम्मा ने उस राहगीर के सामने ही कुण्डी खड़खड़ाई और सुन्दरबाई को दो तीन बार पुकारा भी किन्तु अन्दर से कोई जवाब नहीं मिला।

"सचमुच बहुत गहरी नींद है।" राहगीर ने आश्चर्य व्यक्त किया।

इन दोनों को इस तरह आश्चर्यचकित देख कर पास-पड़ौस के चार-पाँच आदमी वहाँ जमा हो गये। थोड़ी देर में यह संख्या पन्द्रह-बीस तक पहुँच गई। प्रत्येक ने दरवाज़ा खड़खड़ा कर और आवाज़ लगा कर अपने हस्तबल और कण्ठबल का परिचय दिया किन्तु वे सब असफल ही सिद्ध हुए। "अब तो दरवाज़ा तोड़ने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया।" उपस्थित लोगों में से एक ने कहा।

"नहीं यह ठीक नहीं है। न जाने किस आफ़त में फँसना पड़े! अच्छा

तो यह होगा कि हम पुलिस को सूचना दे दें। वही दरवाज़ा तोड़ सकती है।"
दूसरे व्यक्ति ने पहले व्यक्ति का प्रस्ताव रद्द कर दिया।

दूसरे व्यक्ति की बात सुन कर उपस्थित लोगों में से एक-एक करके सभी खिसक गये। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से डर रहा था कि पुलिस को सूचना देने की जिम्मेदारी उसी पर न पड़े। अन्त में उस दरवाज़े के सामने केवल नरसम्मा ही बाकी रह गई।

× × × ×

इस समय तक गाँव के पुलिस-पटेल मारुतिराव को सूचना मिल चुकी थी। पटेल साहब सुन्दरबाई के घर पहुँचे यह जानने के लिए कि आखिर मामला क्या है? पटेल ने नरसम्मा से प्रश्न किया—

"क्या बात है अम्मा? लोग यहाँ क्यों इकट्ठे हुए थे?"

"कुछ नहीं साहब।" नरसम्मा ने उत्तर दिया—"देखिए, सुन्दरबाई का दरवाज़ा बन्द है और पुकारने पर भी अन्दर से जवाब नहीं मिल रहा है। इसीलिए लोग जमा हुए थे। जब एक आदमी ने सुझाव रखा कि पुलिस को सूचित किया जाए तो सब चले गये।"

"अम्मा, तुम यहीं खड़ी रहो, मैं कुछ लोगों को बुलाये लाता हूँ। पंच-नामा करके दरवाज़ा तोड़ा जाएगा और अगर अन्दर कोई गड़बड़ हुई तो उचित कार्यवाही की जाएगी।"

इतना कह कर पुलिस-पटेल चला गया।

थोड़ी देर बाद पुलिस-पटेल वहाँ लौटा। उसके साथ मोहनलाल सेठ, मार्त्तण्डराव मास्टर और राम्या थे। कुल्हाड़ी संभाले लखू खाती भी पीछे-पीछे आ रहा था। एक काग़ज़ पर दरवाज़े की हालत लिखी गई और लखू खाती को कुल्हाड़ी चलाने का आदेश दिया गया। दो चोटों में ही दरवाज़ा टूट गया। एक-एक करके सारे पंच अन्दर घुसे। अन्दर पहुँच कर पंचों ने जो कुछ देखा उसके कारण उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सुन्दरबाई का शरीर अस्तव्यस्त पड़ा था और उसके प्राण-पखेरु न जाने कब के उड़ चुके थे। लकड़ी की पाँच सन्दूकें इधर उधर पड़ी थीं। एक सन्दूक टूटी हुई थी।

न जाने सुन्दरबाई को काहे का सदमा पहुँचा कि बेचारी ने जहर खा कर अपने प्राण दे दिये।" पटेल ने शव की तरफ दृष्टि डालते हुए कहा—"अब अधिक देर करना उचित नहीं। पंचनामा करके इनकी अन्त्येष्टि कर देनी चाहिए।"

"आत्म हत्या के सिवाय कोई दूसरी बात समझ में नहीं आती।" मार्त्तण्डराव मास्टर ने कहा—"दरवाजा अन्दर से बन्द है और बाहर जाने का कोई दूसरा रास्ता है नहीं।"

"मेरा भी यही खयाल है सरकार!" राम्या ने हाँ में हाँ मिलाई। "सुन्दरबाई को कोई क्यों मारता? इसके घर नरसम्मा के सिवाय कोई फटकता भी नहीं था।"

"सेठजी आपकी क्या सम्मति है?" पटेल ने सेठ मोहनलाल से प्रश्न किया। सेठजी चुपचाप खड़े थे किन्तु उसके मन की अस्तव्यस्तता साफ दिखाई दे रही थी।

"मैं तो आपके विचारों से सहमत नहीं हूँ. पटेल साहब! मैं सोच रहा हूँ ये सन्दूकें अस्तव्यस्त क्यों पड़ी हैं? इन सन्दूकों को देखने के बाद यह साफ दिखाई देता है कि यहाँ रात के समय सुन्दरबाई के सिवाय कोई दूसरा आदमी भी था।"

"अगर दूसरा आदमी अन्दर था तो वह बाहर कैसे निकला होगा?" राम्या ने तर्क किया।

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।" सेठ ने उत्तर दिया।

"सन्दूकों के ताले ज्यों के त्यों हैं। एक सन्दूक टूटी है लेकिन उसका सामान उसी में है। चोरी का सन्देह नहीं होता। चोर के सिवाय कोई दूसरा क्यों हत्या करता?"

राम्या ने अपने तर्कों की झड़ी लगा दी।

"मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ, राम्या!" सेठ ने शान्त चित्त से उत्तर दिया।

"गाँव में सुन्दर का कोई वैरी नहीं। इस गाँव से बाहर का आदमी कभी

सुन्दर से मिलने नहीं आया।" राम्या ने विजयी हो कर अन्तिम तर्क पेश किया। वह समझ रहा था सेठ इस तर्क के बाद तो अवश्य हथियार डाल देगा।

"यह तीसरी बात है, जिसे मैं पहले से सोच रहा हूँ।" सेठजी ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया।

"सेठजी तुम भी बड़े जिद्दी हो। अगर इसने आत्म-हत्या नहीं की है तो मरी कैसे? तुम्हीं बताओ इस हालत में क्या समझा जाए?"

"पटेल साहब, यह मामला बहुत गम्भीर मालूम होता है। मेरी राय में पुलिस को इसके मृत शरीर और इस घर की अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए, उसके बाद सुन्दर का दाह-संस्कार होना चाहिए।

"आप जैसा कहते हैं, वैसा ही होगा सेठजी! पुलिस इन्स्पेक्टर को अभी सूचना दे कर बुलवा लेता हूँ।"

पुलिस पटेल आसानी से मान गया।

सब के सब बाहर चले आये। लखू खाती ने दरवाजे में दूसरा कुंडा लगाया। पटेल ने राम्या के हाथ इन्स्पेक्टर को पत्र भेजा। मकान के सामने पहरा लग गया।

× × × ×

सूरज डूबने से पहले ही महबूबखाँ इन्स्पेक्टर गाँव में पहुँच गया। जाँच शुरू हुई। नियमानुसार सबके बयान लिखे गये। बयानों से किसी बात का पता नहीं चल सका। नरसम्मा के अतिरिक्त उस घर में किसी का आना-जाना नहीं था। अतः उसे हवालात में बन्द कर दिया गया। सेठजी के बयान से पुलिस को यह आभास हुआ कि राम्या किसी तरह सुन्दरबाई का दाह-संस्कार जल्दी कराना चाहता था, सन्देह में उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया।

"आपने बिना कारण ही बेचारी मजदूरनी और राम्या को गिरफ़्तार किया है। मेरी राय में तो सुन्दरबाई अपनी मौत से मरी है। मालूम होता है सोते समय इसके हृदय की क्रिया बन्द हो गई।" मार्त्तण्डराव ने इन्स्पेक्टर से कहा।

"यह भी संभव है कि सुन्दर ने आत्म-हत्या कर ली हो।" पटेल ने सन्देह प्रकट किया।

पटेल ने उठ कर अलमारी के ऊपर रखी एक शीशी उठाई और इन्स्पेक्टर की तरफ शीशी बढ़ाते हुए बोला—"आप इस शीशी से क्या समझते हैं?"

"नहीं साहब, यह मामला ऐसा नहीं है, जैसा आप दोनों समझते हैं।" इन्स्पेक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा—"इनके हृदय की गति भी बन्द नहीं हुई और न इन्होंने आत्म हत्या की है। सुन्दर के गले पर कातिल की अंगुलियों के निशान दिखाई दे रहे हैं। इन निशानों का फोटो ले लिया गया है। रही बोतल की बात। बोतल यहाँ रख कर कातिल स्वयं अपने आप फँस गया। बोतल स्काच व्हिस्की की है। मालूम होता है, कातिल ने सुन्दर को शराब पिला कर बेहोश किया और फिर उसकी हत्या की। इसीलिए सुन्दर शोर नहीं मचा सकी।

"यदि आपकी बात सच है इन्स्पेक्टर साहब तो हत्यारा अन्दर का कुण्डा बन्द रहते हुए भी बाहर कैसे निकला होगा?" पटेल ने प्रश्न किया।

"यह बात तो उसी समय मालूम होगी जब वह पुलिस के पञ्जे में फँसेगा।" इन्स्पेक्टर ने पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से कहा—"ये अस्त-व्यस्त सन्दूकें, कमरे के बीचों बीच कपड़ा सुखाने की लोहे की छड़, इन सब से पता चलता है कि सुन्दर के बेहोश होने से ले कर मरने तक कोई व्यक्ति यहाँ मौजूद था। और देखिये वह जलता हुआ दीपक। मालूम होता है सोते समय सुन्दर ने उसे बुझाया नहीं था और मृत्यु के बाद उसे बुझाने वाला कोई रहा नहीं। हत्यारे ने अपना काम इस दीपक के प्रकाश में ही किया है।

पुलिस इन्स्पेक्टर नरसम्मा और राम्या को साथ ले कर थाने में पहुँचा। चलते समय उसने दीपक, लोहे की छड़ और बोतल मोटर में रख लिये थे।

× × × ×

इस घटना को चार दिन हो गये। आज पुलिस थाने में अपूर्व दृश्य था। पुलिस थाने में इन्स्पेक्टर के सामने मारुतिराव पटेल खड़ा था। उसके हाथों में हथकड़ी थी। दो सिपाही उसे पकड़े हुए थे। पटेल को अपने सामने

हाथों में हथकड़ी थी। दो सिपाही उसे पकड़े हुए थे। पटेल को अपने सामने खड़ा देख कर इन्स्पेक्टर बोला—

"पटेल साहब, मैंने उसी दिन कहा था कि यह बोतल हत्यारे को गिरफ़्तार करायेगी। हमको इस बात का सबूत मिल गया है कि आज से छः दिन पहले तुमने यह बोतल बैजनजी की दूकान से खरीदी थी। अभी तक तुमने इसके पैसे भी नहीं चुकाये। अब अधिक चलाकी करना बेकार है। फाँसी का फन्दा तुम्हारी राह देख रहा है। सच सच बता दोगे तो सजा में कुछ कमी हो जाएगी। सवाल बस इतना ही रह गया कि तुम उस कोठरी से बाहर कैसे निकले?"

इन्स्पेक्टर की बात समाप्त हुई ही थी कि दोनों सिपाहियों ने जमीन पर जोर से पाँव पटका। जूतों की कर्कश आवाज के साथ पटेल की हथकड़ी खनखनाई। हाथ पर जोर का झटका पड़ा जिससे पटेल का दिमाग स्तब्ध रह गया। पटेल शायद कोई बात बनाता लेकिन इस झटके ने उसे ऐसा करने से रोका। उसने कहा—

'कुछ साल हुए मेरा सुन्दर से प्रेम हो गया। आज हमारे उस प्रेम-इतिहास को दुहराना बेकार है। हम दोनों एक जाति के नहीं थे अतः यह प्रेम-सम्बन्ध गुप्त ही रहा। चार मास हुए सुन्दर गर्भवती हो गई। सुन्दर जिद करने लगी कि मैं उससे पाँच पंचों के सामने विवाह कर लूँ जिससे वह बदनामी से बच सके। लेकिन मेरे सामने मेरी अपनी बदनामी का सवाल था। इस उलझन से बचने के लिए मुझे एक ही उपाय सूझा कि मैं सुन्दर की जीवन-लीला समाप्त कर दूँ। जो कुछ मैंने किया उसके बताने की आवश्यकता नहीं। एक बात ही बाकी बची है। वह भी बताये देता हूँ। आपने देखा होगा घर में दक्षिण की तरफ एक झरोखा है, जिसमें लोहे की दो सींखें हैं। मैंने उस झरोखे के नीचे सन्दूकों को एक के ऊपर एक रखा। उनके कारण मैं झरोखे तक पहुँच गया। झरोखे की सींखों को मैंने कुछ चौड़ा किया। कपड़े सुखाने की छड़ निकाल कर मैं उसकी सहायता से झरोखे में बैठ गया। मैंने सारी सन्दूकें नीचे डाल दीं। छड़ भी वहीं फेंक दी। झरोखे से बाहर निकल कर सींखों को

सीधा किया और दीवार की दूसरी तरफ़ कूद गया ।

मैं दोषी हूँ । मैं क्षमा नहीं माँगता । मुझे इस बात पर प्रसन्नता है कि परलोक में जात पाँत का झगड़ा नहीं है, इसलिए मैं वहाँ सुन्दर के साथ आनन्दपूर्वक रह सकूँगा ।"

टेलीफोन

चौधरी रणछोड़दास की गिनती हैदराबाद के प्रमुख वकीलों में होती थी। यद्यपि उनकी वकालात बहुत नहीं चलती थी और उनका हाईकोर्ट में खास दबदबा भी नहीं था फिर भी उनका आदर इसलिए होता था कि वे बहुत पुराने वकील थे और समाज में अपने सम्मान को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। वे अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए जिन उपायों को काम में लाते थे उनमें टेलीफोन भी एक था, जब उनके यहाँ कोई नया मुवक्किल आता तो वे अपने टेलीफोन पर किसी काल्पनिक मुवक्किल से, किसी काल्पनिक मुक़दमे के सिलसिले में काल्पनिक फ़ीस के बारे में घण्टों बातचीत किया करते थे।

एक दिन सूट-बूट से सजा हुआ युवक उनके कार्यालय में प्रविष्ट हुआ। वकील साहब ने सोचा हो न हो यह किसी बड़े जमींदार का बेटा होना चाहिए। शायद बाप मर गया है, भाई से लड़ाई हुई होगी, जायदाद के बँटवारे का दावा चल रहा होगा या अब दावा दायर करने की नौबत आई है। मुझ से

सलाह लेने आया है। युवक को बैठने का इशारा करके उन्होंने अपने टेलीफोन का आला उठाया और बातें करने लगे—

"हलो—क्या कहा आपने ?...आना चाहते हैं ?...क्या काम है ? ...उस परसों के मुकदमे के बारे में—मैंने आप से परसों ही कह दिया था पाँच हजार से कम फ़ीस नहीं होगी.. आप चाहते हैं मैं इससे कम में काम करूँ ? क्या कहा ?...आप मुझ से बात करना चाहते हैं ?...बेकार है, मेरे पास फ़ीस तय करने के लिए समय नहीं है।...नहीं। बिल्कुल नहीं।...इस समय एक जमींदार साहब आये हैं।...उनसे एक जटिल मामले पर बातचीत हो रही है।...क्या कहा ? फिर कब ?.. मैं नहीं बता सकता। यदि आप इतनी फ़ीस दे सकते हैं तो अपने कागज़ ले आइए। नहीं तो किसी दूसरे को वकील कर लीजिये। . हैदराबाद में वकीलों की कमी नहीं है।...जी...चाय की प्याली पर भी वकील मिल जाएँगे।...अरे व्यर्थ में समय क्यों बर्बाद कर रहे हैं ?...मेरी शर्त मंजूर है तो जब चाहे तब आइए..., नमस्ते !"

चौधरी रणछोड़दास ने नमस्ते कह कर कुछ क्रोध के साथ आला रख दिया। नवागन्तुक युवक को सम्बोधित करके बोले—"सेठ अमोलकराम का टेलीफोन था। पन्द्रह लाख का दावा है, लेकिन कोई लिखत-पढ़त नहीं है। इतने पर भी पाँच हजार के लिए आगा-पीछा देख रहे हैं। आपने सुन ही लिया मैंने अस्वीकार कर दिया। मैं साफ़ बातें करता हूँ। अच्छा साहब आप किस काम से आये हैं ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

"मैं नौकरी की तलाश में आया हूँ !" युवक ने उत्तर दिया—"किसी ने कहा था आपके यहाँ मुहर्रिर की जगह खाली है। उसके लिए प्रार्थना करने आया हूँ।"

"भई तुमने क्या बात सोची है ?" वकील मन ही मन अपने तीर के व्यर्थ चले जाने पर खीज रहा था लेकिन उसने बड़ी संजीदगी से कहना शुरू किया—"आप अपने चेहरे को देखिये और कपड़ों पर नजर डालिये। आप मुहर्रिरी करेंगे ? आश्चर्य है ! मालूम होता है अभी मेरी जो अमोलकराम से बातचीत हुई उसके कारण आप घबरा गये हैं। कोई बात नहीं। आपकी उम्र

के कारण मैं आप का काम थोड़ी फ़ीस में भी कर दूँगा।"

"नहीं साहब ! मैं सचमुच नौकरी की तलाश में आया हूँ। यदि आप मुझे नौकरी दे सकें तो......"

युवक ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि वकील साहब ने कहा—"अजी जाने भी दीजिये। झटपट बताइए क्या बँटवारे का मामला है या किसी दुष्ट ने अपनी नौजवानी का लाभ उठा कर आप से प्रोनोट लिखवा लिया है।"

"नहीं साहब, मेरा कोई मुक़दमा नहीं है। मुझ से किसी ने प्रोनोट नहीं लिखाया।" युवक ने निराश होकर उत्तर दिया।

"अच्छा, अच्छा। मैं समझ गया हूँ। आप बहुत परेशान हैं। जाइए, अपने किसी मित्र से सलाह कर लीजिये। रणछोड़दास से कोई अच्छा वकील मिले तो मुकदमा उसे ही दे दीजिए। लेकिन इतनी बात ध्यान में रखिये कि थोड़े से लोभ के कारण किसी बुरे वकील के चंगुल में मत फँसिये।"

× × × ×

थोड़ी देर बाद एक दूसरा आदमी कमरे में दाख़िल हुआ। उस व्यक्ति के पतलून की क्रीज काफी सुन्दर और कड़क थी। वह बुशकोट पहने हुए था। बुशकोट की जेब में फाउण्टेनपेन टँगा था और बगल में फाइल थी। आँखों पर चौड़े फ्रेम का चश्मा था। वह इस तरह अन्दर घुसा आ रहा था जैसे इस घर में आने का उसका अधिकार है। उसे अन्दर आने से कोई नहीं रोक सकता। उसकी वेश-भूषा और हाव-भाव से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह कोई सरकारी अधिकारी है। वकील साहब ने यह अनुमान लगाते हुए टेलीफोन उठाया और काल्पनिक डाइरेक्टर पुलिस से बातचीत शुरू की।

"हलो, नमस्ते ! मैं रणछोड़दास वकील बोल रहा हूँ। देखिये कल मैंने आपको सब इन्स्पेक्टर रघुवीरसिंह की अर्ज़ी दी थी। सुपरिण्टेण्डण्ट ने बिना कारण ही उसे बरतरफ़ कर दिया। आपने वचन दिया था कि आप इस अभियोग की जाँच करेंगे।...क्या कहा ?...उस मामले की जाँच करके आपने रघुवीरसिंह को बहाल कर दिया है ?...आपकी बड़ी मेहरबानी है ! आप से

मुझे ऐसी ही आशा थी। आप ही लोगों के कारण हमारी रियासत का नाम उज्जवल है साहव! दूसरे महकमों में तो वड़ा अन्धेर है। उस अन्धेर के वारे में कौन नहीं जानता ? मेरा धन्यवाद स्वीकार करें।...नमस्ते !"

वकील साहव ने धीरे से टेलीफोन का आला रखा और फिर नवागत युवक से बोले—

"आप अभी खड़े हैं ? वैठिये ! आई. जी. पी. से वातचीत में लग गया इसीलिए आपकी तरफ़ ध्यान नहीं गया। हम लोगों को स्वराज्य क्या मिला है, हमारे अफ़सरों का दिमाग ही फिर गया है। उन्हें यह पता नहीं कि पहले वे टानसन-जानसन के मातहत थे और अव गोपालराव-गोविन्दराव के अधीन हैं। लेकिन इससे क्या होता है। सारे अफ़सर मनमानी कर रहे हैं। आप रघुवीरसिंह का मामला ही लीजिये। अगर मैं आई. जी. पी. को न लिखता तो वेचारा बुरी मौत मर जाता। अरे आप अभी खड़े हैं। वैठिये न।...आपके चेहरे पर आश्चर्य झलक रहा है, किन्तु इसमें आश्चर्य की क्या वात है ? वहुत से अधिकारियों से मेरा घनिष्ट परिचय है। यदि आपका भी किसी अधिकारी से काम है तो वताइये। ज़्यादा से ज़्यादा दो दिन में आपका काम पूरा हो जाएगा।"

"मैं टेलीफ़ोन डिपार्टमेण्ट......"

अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि रणछोड़दास बीच में ही वोले "टेलीफोन-विभाग के नाजिम साहव मुझे नित्य प्रति क्लव में मिलते हैं। आप यदि चाहते हैं तो आज सन्ध्या को ही आवेदन-पत्र देकर आपके अनुकूल निर्णय लिखवा लूँगा।"

"मुझे कोई अर्जी नहीं देनी है। मैं टेलीफोन-विभाग......"

इस वार भी रणछोड़दास ने वाक्य पूरा नहीं होने दिया। उन्होंने कहा—

"यदि आप अर्जी नहीं देना चाहते तो मैं अभी नाजिम साहव को टेलीफ़ोन कर दूँगा।"

"आप जरा सुनिये तो युवक ने उद्विग्न हो कर कहा—"मुझे मेरी वात तो पूरी करने दीजिये। मैं टेलीफोन-विभाग में निरीक्षक का काम करता हूँ।

हमारे दफ्तर में पता चला है कि आपका टेलीफोन कुछ दिनों से काम नहीं कर रहा है। मैं देखने आया हूँ कि आखिर इसमें क्या खराबी है। आप तो आई. जी. पी. से बातें कर रहे हैं। जरा मुझे देखने तो दीजिये।"

"मेरा टेलीफोन बिल्कुल अच्छा है साहब! उसे देखने की कोई जरूरत नहीं। आप जा सकते हैं।"

वकील ने उत्तर दिया।

"आखिर देखने में हानि क्या है?" निरीक्षक ने हाथ बढ़ाया।

"नहीं कोई जरूरत नहीं।" कहते हुए वकील साहब ने टेलीफोन अपनी तरफ खींच लिया। उन्हें भंडा फूटने का डर लग रहा था।

× × × ×

चौधरी रणछोड़दास को इस तरह एक ही दिन में दो बार टेलीफोन ने धोखा दिया था। जब तीसरा आदमी कमरे में दाखिल हुआ तो उन्होंने टेली-फोन का प्रयुक्त करना उचित नहीं समझा। उन्होंने नवागत से कहा—"आप क्या चाहते हैं?"

"मैं आपको अपना वकील बनाना चाहता हूँ।" आनेवाले ने उत्तर दिया।

इस बार मामला साफ़ था। धोखे की बात नहीं थी। मुवक्किल पर असर डालना चौधरी साहब की राय में वकील के लिए आवश्यक है, और आनेवाला मुवक्किल था। इसलिए उन्होंने उससे कहा—"आप दो चार मिनिट बैठिये। मैं अपने मुहर्रिर को एक दो जरूरी सूचनाएँ दे दूँ, फिर आप से बात करूँगा।"

"हलो, सत्यनारायण है?" वकील साहब ने टेलीफोन करके अपना दाव चला—"मैंने तुमसे कहा था प्रातःकाल होते ही सेठ बद्रीनाथ को सूचना दे देना कि कल हाईकोर्ट में उनके मुक़दमे का फैसला हो गया। निर्णय उनके पक्ष में हुआ है। आधी फ़ीस उन्होंने दे दी थी, शेष दस हजार बाकी है। उनसे कह देना दस हजार रुपये दे जाएँ और फैसले की नकल ले जाएँ। इस समय मुझे रुपयों की बहुत जरूरत है। मेरे भतीजे का विवाह है।...जल्दी

जाना नहीं तो वह बाजार चला जाएगा और फिर मुँह छिपाता फिरेगा।... अच्छा देखना, वापिसी में जमादार बूढनसिंह के घर भी हो आना। उनके डाके के मुक़दमे में परसों पेशी है। उस दिन इन्स्पेक्टर का बयान होगा। फीस के मामले में वह टालमटौल कर रहा है। उससे कह देना कि बच्चू अगर हवा नहीं खानी तो कल ही पाँच हजार रुपये दे जाना नहीं तो हम परसों हाज़िर नहीं होंगे। फिर तुम हो और हवालात है।...मिर्जा हाशिम के पास गये थे?...अच्छा। उसने क्या कहा?...हाँ, इन्कम टैक्स के पच्चीस हजार का चेक और फीस के लिए सात हजार का चेक काट दिये हैं? ..मिर्जा साहब सचमुच बड़े आदमी हैं। फिर भी उनसे जाकर कहना आप साठ हज़ार की रप्पस से बचे हैं, ऐसी हालत में फ़ीस के सात हजार बहुत कम है। उनसे कहना तीन हजार और देकर पूरे दस कर दें। बस, आज के लिए ये तीन तकाजे बस हैं। इन तकाज़ों को करके आप हाईकोर्ट में पहुँच जाइये। मैं भी कुछ देर में आता हूँ। परमेश्वर की दया से आज मुवक्किलों का ताँता नहीं है। केवल एक सज्जन आये हैं। उन्हें निपटा कर आ रहा हूँ। तुम्हारे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं।"

वकील साहब ने टेलीफोन का आला रख कर नवागन्तुक से पूछा—"कहिये, आपका क्या मामला है? किस कचहरी में काम है? हाईकोर्ट, रेवेन्यू बोर्ड या इन्कमटैक्स का कार्यालय? अगर मामला सुप्रीम कोर्ट में चलाना है तब भी कोई बात नहीं। सच मानिये मुझे दिल्ली के वकीलों पर रत्ती भर विश्वास नहीं है। पिछले सप्ताह ही मैंने दिल्ली जाकर ठाकुर मनोहरसिंह की अपील सुप्रीम कोर्ट में दाखिल की है। अब मैं ही बहस करने के लिए भी जाऊँगा। लेकिन हाँ आपको इन सब बातों से क्या मतलब? आप अपना काम बताइये।"

"वकील साहब मेरा काम तो हो गया।" कह कर नवागन्तुक उठ खड़ा हुआ। बोला—"मैं इन्कमटैक्स आफिस का इन्स्पेक्टर हूँ वकील साहब! आपकी आमदनी का हिसाब आज तक हमारे यहाँ नहीं आया। मुझे जाँच के लिए भेजा गया था। चार-पाँच मामले तो मालूम हो गये। अब अपना

अपना हिसाब जल्दी ही भेज दीजिये। आपने अभी टेलीफोन पर जिन मामलों का जिक्र किया उन्हें अवश्य दर्ज करें अन्यथा चक्कर में पड़ जाएँगे।"

इन्स्पेक्टर शब्द क्या बोल रहा था वकील की छाती पर बाण चला रहा था। जिस तरह मूसलाधार वर्षा में दरवाजे बन्द करके कमरे में बैठा हुआ व्यक्ति पास में गिरी हुई बिजली की कड़कड़ाहट से चौकन्ना हो जाता है, ठीक वही हाल वकील साहब का हुआ। सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाए! जब उन्हें होश आया तो वकील साहब बाहर निकल चुके थे। वकील साहब ने साहस बटोर कर इन्स्पेक्टर को बुलाया। जब इन्स्पेक्टर कुर्सी पर बैठ गया तो वकील साहब मुस्कराते हुए बोले—

"आपने मेरी उन सब बातों को सच मान लिया जो मैंने अभी टेलीफोन पर कही थीं। अच्छा तो आप यहीं से अपने आफीसर को टेलीफोन से रिपोर्ट कर दीजिए, जिससे मैं यह समझ सकूँ कि आपने बिल्कुल ठीक रिपोर्ट की है।"

यह कह कर वकील साहब ने टेलीफोन इन्स्पेक्टर के आगे सरकाया। इन्स्पेक्टर ने नम्बर मिला कर जब रिसीवर कान से लगाया तो उन्हें पता चला टेलीफोन में किसी प्रकार की ध्वनि नहीं हो रही है। उन्होंने वकील से कहा—

"मालूम होता है आपका टेलीफ़ोन ख़राब हो गया है?"

"यह आज ख़राब नहीं हुआ साहब, महीने भर से ख़राब है। सच तो यह है कि मैंने जानबूझ कर इसे बिगाड़ा है। अगर आप पूछेंगे कि ख़राब टेलीफोन क्यों रखते हो तो मैं कहूँगा मेरे लिए यह ख़राब टेलीफोन ही लाभदायक है। बस आज ही मालूम नहीं क्या हो गया जो मैं धोखा खा रहा हूँ।"

इतना कह कर चौधरी रणछोड़दास ने रिसीवर को देहली पर इतनी जोर से दे मारा कि उसके टुकड़े टुकड़े हो गए।

परामर्श

रामाधीन के बाग का माली तुकाराम सूरज उगने से पहले उठता था और जब तक सूरज निकले मोठ चला कर पूरे बगीचे को पानी दे देता था। बाग के आसपास रहनेवालों को पिछले दस वर्षों में एक दिन भी ऐसा याद नहीं जब तुकाराम के इस कार्यक्रम में कभी बाधा पड़ी हो। रामाधीन का बगीचा हरा-भरा रहता था तो इसका कारण यह था कि सूरज निकलने से पहले पेड़ पौधे पानी पी कर तृप्त हो जाते थे, फिर उनके मुर्झाने का सवाल ही कैसे पैदा होता? तुकाराम की आयु साठ के लगभग होगी। वह घर में अकेला था। पत्नी को मरे दस वर्ष हो चुके। बाल-बच्चा था नहीं। निकट का कोई सम्बन्धी भी नहीं था जिसे वह अपने पास ला कर रखता, फिर आस-पास के बच्चे उसे दादा कह कर पुकारते थे और वह भी उन्हें पौत्रों की तरह प्यार करता था। पत्नी के मरने के बाद उसने दूसरा विवाह नहीं किया। खा-खरच कर साल भर में जो पूँजी बचती उससे एक गहना बनवाता और मृत पत्नी के नाम से उसे दीवाली के दिन धारण करता। एक साल कड़ा, दूसरे साल

बालियाँ और तीसरे साल अँगूठी बस यही सिलसिला चलता रहा। लोग पूछते दादा यह गहना किसके लिए गढ़वा रहे हो? तो कहता—"यह बात मैं तुम लोगों को कैसे समझाऊँ? इन गहनों का स्पर्श उतना ही सुखदायी है जैसा मेरी पत्नी का स्पर्श होता था।"

लेकिन आज नियम के विरुद्ध न तो मोठ चलने की आवाज सुनाई दे रही थी और न तुकाराम के गीत की ध्वनि ही सुनाई पड़ती थी।

रास्ते से गुजरते हुए राजा ने बहराम से कहा—"क्या बात है आज तुकाराम मोठ नहीं खींच रहा है? कहीं बीमार-बीमार तो नहीं पड़ गया बेचारा?"

"शायद बीमार हो गया हो?" बहराम ने उत्तर दिया।

"तुकाराम और बीमारी? असम्भव! मैंने अपने जीवन में उसे कभी बीमार नहीं देखा।" राजा ने कहा।

इतने में सामने से अमृतराव आते दिखाई दिये। उसे सम्बोधित करते हुए राजा ने दरियाफ्त किया—"अमृतराव तुम तो बरसों से इसी मुहल्ले में रहते हो। तुमने कभी तुकाराम को बीमार देखा है?"

अमृतराव ने प्रश्न का उत्तर न दे कर प्रश्न ही किया—"तुकाराम क्यों बीमार होने लगा जी? बगीचे की शुद्ध वायु, ताजा साग-भाजी, सुबह से शाम तक मेहनत न पत्नी की चिन्ता और बच्चों की फिक्र, फिर वह बीमार क्यों होने चला? क्यों तुमने कुछ सुना है?"

"अजी कुछ भी नहीं सुना। आठ बजे तक तुकाराम कुएँ पर न पहुँचे क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है?" बहराम ने आशय व्यक्त किया।

"बात तो सही है। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ।" महदप्पा ने कहा, जो अभी इस मण्डली में शामिल हुआ था। उसने बढ़ावा देते हुए यह सुझाव भी रख दिया कि चलो चल कर उसकी झोपड़ी में देख लिया जाए, पास ही तो है।

सभी लोग तुकाराम को चाहते थे। उसे आज कुएँ पर न देख कर सभी को चिन्ता हुई। लोगों ने उसकी झोपड़ी पर जा कर देखा। दरवाजा यों ही

उढ़का हुआ था। दरवाजे के खोलने में कठिनाई नहीं हुई, लेकिन जब लोगों ने अन्दर का दृश्य देखा तो होश उड़ गये। अन्दर तुकाराम मरा पड़ा था। लोगों की समझ में यह बात तत्काल आ गई कि उसकी मौत अपने आप नहीं हुई। किसी ने उसें मारा है। उसके गले में गहरा घाव लगा था। सिर के नीचे जमीन खून से गीली हो रही थी। आनेवाले लोग इस दृश्य को देख कर चौकन्ने हो गये और एक दूसरे की तरफ इस तरह से देखने लगे जैसे पूछ रहे हों अब क्या किया जाए ?

"जो हुआ सो हुआ, अब हमें पुलिस को सूचना दे देनी चाहिए। महदप्पा थाना चला जाएगा। हम सब यहीं रहें ! पंचनामा होने के बाद ही घर चलें।" बहराम ने धैर्य समेट कर कहा।

"तुम ठीक कहते हो बहराम ! और हाँ अब तुकाराम की अन्त्येष्टि भी तो हमीं लोगों को करनी पड़ेगी। पुलिस इन्स्पेक्टर को जल्दी बुलाना चाहिए।" राघोबा ने समर्थन किया।

लगभग आध घण्टे के बाद तीन सिपाही और मथुरादास इन्स्पेक्टर घटना-स्थल पर पहुँचे। इन्स्पेक्टर ने लाश को गौर से देखा। जमीन पर निगाह डाली और खुश होते हुए बोले—"मैंने अपनी जिन्दगी में खून का इतना सीधा सादा मामला नहीं देखा। देखिए यह पाँव का निशान कितना साफ़ दिखाई दे रहा है। इस निशान के मिलने के बाद खूनी कितने दिन छिप सकेगा ?"

"आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, साहब !" पुलिस के दूसरे अधिकारी महताबखाँ ने कहा।

"तो फिर इस मामले को तुम्हीं डील करो। मामला बहुत आसान है। जल्दी ही सफलता मिलेगी।" मथुरादास ने अपने सहायक से कहा।

लाश का पंचनामा किया गया। उपस्थित लोगों ने यही विचार प्रकट किया कि तुकाराम के गले पर किसी तेज चीज का वार किया गया है। रक्त के अधिक प्रवाह के कारण मृत्यु हुई है सब को यह बात मालूम ही थी कि तुकाराम को गहने गढ़ाने और पहनने का बहुत शौक था। इस समय उसकी

लाश पर एक भी गहना नहीं था। सभी लोगों का मत था कि यह खून गहनों के लिए किया गया है। जब पंचनामे पर हस्ताक्षर होने लगे तो एक पंच ने कहा—"अच्छा हो इस समय तुकाराम के मालिक रामाधीन को भी बुलवा लिया जाए।"

महदप्पा को रामाधीन के घर भेजा गया। उसने शीघ्र ही लौट कर कहा कि रामाधीन घर पर नहीं है।

"बड़े आश्चर्य की बात है। जब हम लोगों ने देखा कि आज कुआँ नहीं चल रहा है तो यहाँ दौड़े चले आये। रामाधीन का घर बगीचे में होते हुए भी उसे इस बात का ध्यान नहीं हुआ। और वह इस समय घर में भी नहीं है! मुझे तो दाल में काला दिखाई देता है।" महताबखाँ, सब इन्स्पेक्टर मथुरादास को सम्बोधित करते हुए बोला।

महताबखाँ अभी कुछ और बोलना ही चाहता था कि रामाधीन आ खड़ा हुआ। पुलिस के सिपाहियों और लोगों को तुकाराम की झोपड़ी के पास देख कर रामाधीन ने आश्चर्य के साथ महताबखाँ से पूछा "हुजूर, आज सुबह सुबह आपका यहाँ कैसे आना हुआ?"

"तुम्हारे माली तुकाराम का रात में कत्ल हुआ और तुम्हें मालूम नहीं? भई तुम भी खूब निश्चिन्त आदमी हो!" मथुरादास ने रामाधीन से कहा।

"खून? तुकाराम का खून!!! किसने किया? बेचारा गरीब तुकाराम, मेरा माली!!! उसने अपनी जिन्दगी में कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। उसे भी किसी ने मार डाला! कितना नीच होगा वह क़ातिल?"

रामाधीन विलाप करने लगा।

"जो कुछ होना था वह तो हो गया। अब रोना-धोना बेकार है। लेकिन यह तो बताओ रामाधीन तुम आज इतना सवेरे कहाँ चले गए थे?" महताबखाँ ने सवाल किया।

"मैं रात को अपने एक मित्र के साथ गया था। वहीं सो गया। चाय पी कर चला आ रहा हूँ।"

महताबखाँ ने मथुरादास के कान में धीरे से कहा—"अभी से गैरहाज़री की गवाही तैयार कर रहा है।" और उसने फर्श पर पड़े हुए पाँव के निशान से रामाधीन के पाँव के निशान को मिलाने की कोशिश की। दोनों में काफ़ी समानता नज़र आ रही थी। इसी समय उसे बाँए पाँव के पाजामे के निचले हिस्से में खून का धब्बा भी दिखाई दिया।

"रामाधीन जी, मैं पूछ सकता हूँ आपके पाजामे के बाँए हिस्से में यह लाल लाल धब्बा कब और कैसे पड़ा?" महताबखाँ ने बाजी जीतनेवाले खिलाड़ी के स्वर में प्रश्न किया।

रामाधीन ने इस प्रश्न के साथ अपने बाएँ पाँव के धब्बे को देखा तो चेहरा फक्क हो गया जैसे महीनों की बीमारी के बाद आज ही खाट से उठा हो। उसने उत्तर में कुछ भी नहीं कहा। सिर झुकाए चुपचाप देखता रहा। उसकी इस अवस्था का लाभ उठाते हुए महताबखाँ ने हुक्म दिया—"रामाधीन जरा उस निशान पर तो पाँव रखो।"

सरकस के जानवर इच्छा न रहते हुए भी जिस तरह मास्टर की आज्ञा का पालन करते हैं, उसी तरह रामाधीन ने भी अपना बाँया पँजा उस निशान पर रखा। रामाधीन ज्यादा देर तक खड़ा नहीं रह सका। उसे चक्कर आया और वह तूफ़ान में उखड़े हुए पेड़ की तरह जमीन पर गिर गया। उसे इस तरह गिरता हुआ देख कर महताबखाँ ने मथुरादास से कहा—

"मैंने आज तक नहीं देखा कि खूनी स्वयं पुलिस के जाल में फँसा हो। मेरी सम्मति में इसी समय इसके घर की तलाशी भी लेनी चाहिए।"

जब रामाधीन को होश आया तो उसने देखा उसके हाथों में हथकड़ी पड़ी है। उसके सामने छोटा-सा सन्दूक पड़ा था, उसे मालूम हुआ कि यह सन्दूक उसी के घर से बरामद किया गया है। रामाधीन स्थिति को समझने की कोशिश कर रहा था कि महताबखाँ ने उससे सवाल किया—"यह सन्दूक किसका है? तुम्हारे घर में कब और कैसे पहुँचा?"

"यह सन्दूक स्वर्गीय तुकाराम का है। कुछ दिन पहले उसने इसे मेरे पास रखा था। उसने मुझे बताया था कि इस सन्दूक में उसकी मृत पत्नी के

गहने हैं।"

उस सन्दूक का भी पंचनामा हुआ। सब पंचों को अपने अपने घर जाने की आज्ञा मिल गई। सिपाहियों को आदेश दिया गया कि वे रामाधीन को हवालात में ले जाएँ और इन्स्पेक्टर ने महताब से कहा कि यदि उससे और भी कुछ पता चल सके तो वह कोशिश करें।

× × ×

ठीक तीन बजे महताबखाँ पेटी को लिये हुए थाने पहुँचा। यह पेटी भी रामाधीन के घर में मिली थी। मथुरादास ने सब-इन्स्पेक्टर से सवाल किया—"महताबखाँ, पेटी में क्या क्या निकला? मेरे विचार से पेटी में वह सब कुछ निकला होगा जो रामाधीन को फाँसी के तख्ते तक पहुँचा देगा।"

"सिर्फ जनानी जेवर निकले हैं।" महताब ने उत्तर दिया।

"याने तुकाराम की पत्नी के गहने? यह बात तो सुबह रामाधीन ने भी स्वीकार की थी।" मथुरादास ने कहा।

"तुकाराम को मार कर रामाधीन यह पेटी उस झोपड़ी से उठा ले गया होगा!"

"फौजदारी के कानून के अनुसार रामाधीन गवाह के कठघरे में नहीं खड़ा किया जा सकता। फिर इतने दिन बाद गाँव में कौन ऐसा आदमी है जो यह बता सके कि ये जेवर तुकाराम की पत्नी के ही हैं। अगर रामाधीन की स्वीकृति ही मान ली जाए तो उसका पूरा बयान सही मानना पड़ेगा। यह भी मानना पड़ेगा कि यह पेटी उसके पास गत पन्द्रह-बीस वर्षों से है।" मथुरादास ने सन्देह-प्रकट किया।

"आप क्या सोचते हैं साहब?" महताबखाँ ने पूछा।

"कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण रामाधीन निर्दोष दिखाई देता है। वह सज्जन और धनी है। थोड़े-से जेवरों के लिए वह खून कर देगा इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

"धन बड़ों बड़ों को अन्धा बना देता है, साहब!" महताब ने शक दूर करना चाहा।

"दूसरी बात यह है, तुकाराम वृद्ध होते हुए भी कमजोर नहीं था। वह कम से कम रामाधीन को तो गिरा ही सकता था।"

"हथियार कमजोर से कमजोर आदमी को भी बलवान बना देता है।" महताबखाँ ने इस बार भी शंका का समाधान किया।

"रामाधीन ने बिना झिझक के स्वीकार कर लिया था कि पेटी स्वर्गीय तुकाराम की ही है।"

"स्वीकार न करता तो क्या करता ? पेटी पर नाम जो लिखा है।" महताब के उत्तर में गर्व की झलक थी।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे।

महताबखाँ ने स्तब्धता भंग की—"रामाधीन बहुत चालाक मालूम होता है। उसने दोनों प्रकार के जेवरों को अलग अलग रख कर न्यायाधीश के मन में सन्देह उत्पन्न करने की व्यवस्था कर दी है। इस समस्या का हल होना ही चाहिए। सात दिन तक यः चालान नहीं होगा। मैं उन दूसरी तरह के जेवरों का पता लगाता हूँ।"

× × ×

सात दिन के लिए रामाधीन का मुकदमा स्थगित हो गया। पाँच दिन बीत गये। अब तक उन जेवरों का पता नहीं चला जिन्हें तुकाराम पहना करता था। मथुरादास का मन कहता था रामाधीन निरपराध है। वह इतना नीच नहीं हो सकता कि कुछ रुपयों के लिए एक आदमी का खून करे। और वह हत्या भी अपने ऐसे नौकर की जिसने जीवन भर मालिक की तन-मन से सेवा की हो। किन्तु साथ ही उनके सामने तर्क उपस्थित होता कि रामाधीन के घर में उसकी पत्नी के जेवर मिले, तुकाराम की लाश के पास उसके पाँव का निशान था और उसके पाजामे पर खून के निशान थे। रामाधीन अपने घर से बाहर रहता है और वह घर तब लौटता है जब पुलिस वहाँ पहुँच चुकती है। ये सब तर्क एक तरफ थे, फिर भी मथुरादास का मन कुछ दूसरी ही बात सोचता था।

पुलिस ने सराफे के व्यापारियों और सुनारों को सूचना दे दी थी कि अमुक-अमुक गहनों को बेचने के लिए यदि कोई आये तो थाने में इत्तिला दी जाए।

किन्तु पाँच दिनों में ऐसी कोई सूचना नहीं मिली। अब तक मथुरादास का विचार था कि जिस किसी ने तुकाराम की हत्या की है उसे पैसों की बहुत जरूरत रही होगी। वह बहुत दिन तक जेवर अपने पास नहीं रखेगा। लेकिन अब उनकी धारणा हो चली थी कि यह काम किसी पक्के चोर का होना चाहिए जो पुलिस से बचने के लिए जेवर नहीं बेच रहा है। हो सकता है कातिल स्वयं सुनार हो और उसने जेवर गला कर बेचा हो। थाने में चोरों की जो सूची थी उस पर गौर किया गया और सभी चोरों की गतिविधि जानने के लिए सिपाही नियुक्त किये गये। किन्तु कोई लक्षण ऐसा नहीं दिखाई दिया जिससे सन्देह किया जा सके।

मथुरादास गाँव के सभी समाचारों को ध्यानपूर्वक सुनते थे। इतने ही में उन्हें सूचना मिली कि हरिजनों के मुहल्ले में महादेव नामक धेड़ ठाट-बाट से सत्यनारायण की कथा बँचवाने वाला है। खबर बहुत मामूली थी किन्तु मथुरादास का ध्यान इस घटना ने खींच लिया। जब प्रातःकाल सब जमादार जमा हुए तो उन्होंने हरिजन-बस्ती से सम्बन्धित जमादार से पूछा –

"महादेव धेड़ के यहाँ सत्यनारायण की पूजा क्यों हो रही है? क्या उसके घर कोई बेटा हुआ है या कोई बीमार मरते मरते बचा है?"

"नहीं हुजूर, ऐसी तो कोई बात नहीं है। इससे पहले भी उसने कभी सत्यनारायण की कथा नहीं कराई। मैं तीन साल से जमादार हूँ। इससे पहले दो वर्ष तक सिपाही था। पाँच वर्षों की बात तो मैं जानता हूँ।" जमादार ने उत्तर दिया।

"अच्छा, उसकी कथा पर नजर रखो। अगर कोई खास बात दिखाई दे तो तुरन्त सूचना देना।"

× × × ×

आज छठा दिन है। दिन के तीन बजे थे। मथुरादास इन्सपेक्टर कार्यालय में बैठे काम कर रहे थे। इतने में जमादार ने आ कर सूचना दी —

"हुजूर, महादेव धेड़ ने बहुत ठाट से सत्यनारायण की पूजा की। पचास-साठ अतिथि आये थे। सब ने प्रसाद पाया और धन्यवाद दे कर चले

गये। विशेष वात यह है कि प्रसाद लेने मुनव्वर पठान भी आया था। मैंने महादेव से पूछा सत्यनारायण की कथा में पठान क्यों आया है, तो उसने कहा इससे कर्ज ले कर ही कथा कराई है। पूछने पर उसने वताया सन्तान के लिए कथा कराई जा रही है।"

मथुरादास छोटी से छोटी वात पर भी ध्यान देते थे, सैकड़ों वातों पर विचार करने के वाद एकाध वात काम की निकलती थी। उसका कहना था कि मनो मिट्टी साफ़ करने के वाद हीरा मिलता है। पुलिस का काम उपन्यास के जासूस की तरह सरल नहीं है कि झटपट खोज की और चोर को पकड़ लिया। प्रत्येक वात की छानवीन करनी पड़ती है। कई वार ऐसे अपराधों का पता चलता है कि उनकी सूचना कभी पुलिस को मिलती ही नहीं।

मथुरादास ने जमादार को आदेश दिया—"मुनव्वरखाँ पठान को मेरे पास भेजा जाए।"

× × + ×

चार वजे उनके पास मुनव्वरखाँ आया तो जैसे डूवते को तिनके का सहारा मिला। उन्होंने उससे पूछा—

"खान तुम तो अजीव आदमी हो। प्रसाद के लड्डू मिले तो वुतपरस्ती भी करने लगे।

"अच्छा, मैं समझ गया इन्स्पेक्टर साहव। आप महादेव की सत्य-नारायण की कथा का जिक्र कर रहे हैं?" खान ने वात जारी रखी। महादेव मेरा पुराना आसामी है! उसकी तरफ़ मेरे तीन सौ रुपये वाकी थे। कुछ दिन हुए उसके चाचा का देहान्त हो गया। चाचा की जायदाद उसे ही मिली है। कुछ जेवर भी थे। महादेव ने उन जेवरों से मेरा कर्ज उतार दिया। इसी खुशी में उसने सत्यनारायण की कथा कराई है। मुझे भी दावत दी थी। इसीलिए चला गया। इसमें वुतपरस्ती की कौन-सी वात है?"

"जेवरों में क्या क्या मिला आपको?" मथुरादास ने उत्साहित हो कर पूछा।

"जी यही कान की दो वालियाँ, एक कड़ा। सारा माल सात सौ

का होगा।"

"और तुमने सिर्फ तीन सौ नें ही हिसाब बेबाक कर दिया!"

"जी मैंने उसे ऊपर से सौ रुपये और दे दिये। बेचारे गरीब लोग सोने-चाँदी की कीमत क्या जानें।" खान ने कहा।

मथुरादास ने त्यौरी बदल कर कहा—"खान, यह माल चोरी का है। अपना भला चाहते हो तो सारा जेवर ले कर थाने में वापिस आ जाओ। अगर जेवर नहीं लौटाया तो जेल की हवा खानी पड़ेगी और हो सकता है फाँसी के तख्ते पर भी चढ़ना पड़े।"

"जो हुक्म सरकार! मुझे इससे क्या लेना-देना है।" घबराये हुए खान ने कहा।

मुनव्वरखाँ के बाहर जाते ही उन्होंने जमादार को सम्बोधित करते हुए कहा—"दो सिपाही खान के पीछे लगा दो। कहीं वह मौका पा कर भाग न जाए। तुम स्वयं जाओ और महादेव को पकड़ कर हाजिर करो। और हाँ किसी को भेज कर रामाधीन को भी हवालात से बुलवा लो।"

इसी समय महताबखाँ कार्यालय में दाखिल हुआ। उसने मथुरादास को आज गैर मामूली खुश देखा तो खुशी का कारण पूछा। मथुरादास ने कहा—"छः दिन से जिसकी खोज में दिन-रात एक कर दिये आज वह अचानक हाथ लग गया। क्या इस बात पर खुशी नहीं मनानी चाहिए?"

"क्या तुकाराम के कातिल का पता चल गया? भाई, वाह! तुमने भी कमाल कर दिया। बधाई स्वीकार कीजिये। क्या रामाधीन सचमुच निरपराध है?"

"अजी अब झूठ सच की क्या कहूँ? सारी बातें सामने आ जाती हैं।"

"इतने में मुनव्वरखाँ ने गहने ला कर टेबल पर रख दिये। उन गहनों को देख कर महताबखाँ ने पूछा—"अरे ये सब कैसे मिल गये?"

"अभी गहने की बात क्यों पूछते हो। कुछ ही देर में कातिल भी पहुँच जाता है, तब सारी बातें मालूम हो जाएँगी।"

इतने में दो जवान महादेव को हथकड़ी डाल कर कार्यालय में ले आये।

महादेव की तरफ़ इशारा करके मथुरादास ने पूछा —"महादेव, पहचानते हो ये जेवर किसके हैं ?"

उन जेवरों को देखते ही महादेव को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आकाश से भयंकर बिजली गिरी हो और पाँव तले की जमीन फट गई हो ! वह जैसे उस दरार में नीचे ही नीचे चला जा रहा हो। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। महादेव के लिए खड़ा रहना मुश्किल हो गया। वह इन्स्पेक्टर के पाँवों पर गिर कर लगा गिड़गिड़ाने —

"सरकार मुझे बचा लीजिये। मैं पापी हूँ। मैंने निर्दोष तुकाराम के प्राण लिये हैं। न जाने मुझ में यह कैसे दुर्बुद्धि जागी। लेकिन क्या करूँ सरकार ? मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था। मैंने सोचा सब कुछ ठीक हो गया, इसीलिए सत्यनारायण की कथा कराई। आप को तो सब कुछ मालूम ही हो गया। आप ही मुझे बचा सकते हैं। आप मेरे माई-बाप हैं। मुझे फाँसी के तख्ते से बचा लीजिये।"

"महादेव, धीरज रखो। जो कुछ होना था हो गया, अब सब कुछ सच सच बता दो।" मथुरादास ने दिलासा दी।

"कहता हूँ, बिल्कुल सच सच कहता हूँ सरकार।" महादेव उठ कर खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर बोला—"चार वर्ष पहले मैंने अपने बेटे की बीमारी में मुनव्वरखाँ से पचास रुपये उधार लिये थे। बच्चा तो चला गया लेकिन कर्ज बाकी रहा। और यह कर्ज उस नदी की तरह बढ़ता गया जो छोटे-से स्रोत के रूप में निकलती है और बढ़ती ही जाती है। ब्याज में पिचहत्तर रुपये देने पर भी मेरी तरफ़ तीन सौ रुपया बाकी निकला। खान ने सख्त तकाज़ा किया। उस दिन खान ने धमकी दी थी कि अगर मैंने कल सुबह तक रुपये नहीं दिये तो वह मेरी पत्नी को खींच कर ले जाएगा। उसके बाद मैंने जो कुछ किया आप लोगों को मालूम है।

रास्ते की झड़प

रात के आठ बजे थे। गर्मी के दिन थे और बागेग्राम में शान्ति छाई हुई थी। बागेग्राम के लानों पर घूमने वाले लोग अपने घरों को वापिस चले गये थे। दो-तीन जगह चार-चार, पाँच-पाँच आदमियों की टोली बैठी हुई थी। एक टोली में रिटायर्ड पुलिस इन्स्पेक्टर माधवराव, उनके मित्र मधुसूदन, और रामैया वर्त्तमान राजनीतिक समस्याओं पर विचार कर रहे थे। इस टोली से कुछ दूर लान के किनारे एक अमेरिकन लैण्डो कार खड़ी थी। गाड़ी का ड्राइवर दूर बैठा था। गाड़ी की पिछली सीट पर एक जोड़ा धीरे धीरे बात कर रहा था। ऐसा लगता था जैसे नदी के किनारे पूनम की रात में एक डाल पर बैठा हुआ चकवा-चकई का जोड़ा एक दूसरे को निहार रहा हो, गाड़ी और वेश-भूषा से वे जागीरदार लगते थे। हो सकता है पति-पत्नी हों, हो सकता है भाई-बहन हों।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक गाड़ी रुकी जिसमें गुण्डे किस्म के चार-पाँच व्यक्ति बैठे थे। वह गाड़ी उस लैण्डो कार के पास आ कर रुकी। उस मोटर को

रुकते हुए देख कर रामैया ने कहा--"वदमाशों को जैसे पूरे वागेश्राम में यहीं गाड़ी रोकने की जगह मिली है !"

इतने में आने वाली गाड़ी कुछ पीछे हटी और दोनों गाड़ियों में टक्कर हो गई। टक्कर होने की देर नहीं थी कि नई आने वाली गाड़ी का ड्राइवर नीचे उतर कर चिल्लाया—"गधे कहीं के। गाड़ी को ठीक तरह से पार्क करना भी नहीं आता। अब हमारी गाड़ी का नुकसान कौन भरेगा ?

दोनों स्त्री पुरुष जैसे बैठे थे, उसी तरह बैठे रहे। जैसे कुछ हुआ ही नहीं। लेकिन मधुसूदन से चुप नहीं रह गया। वह बोल ही तो उठा—"वाह जनाव, खुद ने तो ब्रेक लगा कर गाड़ी को टक्कर दी है, और दूसरे को दोष देते हो। यह तो वही कहावत हुई—उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।"

"आपको बीच में 'दाल भात में मूसरचन्द' बनने के लिए किसने कहा जनाब ?" ड्राइवर ने मधुसूदन से कहा और फिर पास ही घूमने वाले सिपाही को बुला कर कहा—"जवान, इस गाड़ी का नम्बर नोट करो। इस गाड़ी ने हमारी गाड़ी को टक्कर दी है।"

मोटर में बैठे हुए सज्जन ने धीमी आवाज से कहना शुरु किया—"जवान इसमें हमारा कोई दोष नहीं। आप देख रहे हैं मेरी गाड़ी पर ड्राइवर भी नहीं है। फिर मेरी गाड़ी आगे कैसे सरक सकती है ? इन्होंने ही अपनी गाड़ी पीछे हटा कर हमारी गाड़ी को टक्कर दी है और उल्टे हमें ही डाँट रहे हैं।"

"समझ गया, पूरी बात समझ गया।" जवान ने कहा—"मालूम होता है आपका ड्राइवर विना ब्रेक लगाये गाड़ी खड़ी कर गया। आपकी गाड़ी सरक गई और इनकी गाड़ी से टकरा गई।"

"बिल्कुल सही है। आप इनकी गाड़ी का नम्बर लिखिये। मैं थाने पर रिपोर्ट करता हूँ।"

"नम्बर क्या नोट करना साहब ? आप दोनों भी थाने चले चलिये मुन्तजिम साहब जो ठीक समझेंगे सो करेंगे।" इतना कह कर जवान लैण्डो कार पर आगे सवार हो गया और हार्न वजा कर ड्राइवर को बुलाने लगा। जब ड्राइवर आ गया तो उसने उसे थाने पर मोटर ले चलने के लिए कहा।

यह सब देख कर मधुसूदन का खून खौलने लगा। वह इस अन्याय को सहन नहीं कर रहा था। उसने उठ कर मोटर वाले सज्जन से कहा—"आप घबराइये मत। मैं आपकी तरफ़ से गवाही देने के लिए आपके पीछे-पीछे थाने पर आता हूँ।"

मोटर में बैठे हुए सज्जन ने जरा सरक कर मधुसूदन के लिए जगह बनाई लेकिन इतने में मोटर स्टार्ट हो चुकी थी और उधर माधवराव ने हाथ पकड़ कर मधुसूदन को जाने से रोक लिया।

जब मोटर निकल गई तो मधुसूदन ने माधवराव को डाँटा—"यह आपने क्या किया! बेचारा नाहक चक्कर में पड़ेगा।"

"वह बेचारा भी नहीं है और नाहक चक्कर में भी नहीं पड़ेगा। इन बातों में तुम अभी निरे बच्चे हो। रास्ते के ये संघर्ष कभी कभी बहुत अर्थ भरे होते हैं। मैं नहीं कह सकता कि गाड़ी में बैठा हुआ वह कौन सज्जन था किन्तु उनके साथ वाली महिला न तो उनकी पत्नी थी और न बहिन ही। उसे मैं जानता हूँ। मेंहदी की नन्ही जान थी वह। दूसरी मोटर को चलाने वाले सज्जन जो नीचे उतर कर इस तरह गरज-गरज कर बातें कर रहे थे इन्स्पेक्टर दीननाथ हैं। उन्होंने मेरे हाथ के नीचे काम किया है। उन्हें देखने के बाद मेरा अनुमान तो यह है कि मोटर में बैठा हुआ आदमी कोई बड़ा डाकू है, जिसकी गिरफ्तारी का समाचार तुम्हें कल या परसों समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलेगा।"

"मेरा भी यही अनुमान है"—रामैया ने हां में हाँ मिलाई।—"लेकिन उसे पकड़ने के लिए इस तरह की हुल्लड़बाजी क्यों की गई?"

"यों ही किसी को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता रामैया, किसी न किसी बहाने की जरूरत पड़ती है। बड़े बड़े डाकुओं को पकड़ने के लिए इस तरह जाल रचा जाता है। ये लोग इन हथकण्डों में आ कर आसानी से फँस जाते हैं। एक बार थाने में पहुँच गये तो बस। फिर ऐसे तड़पते हैं जैसे बिना पानी के मछली। ये डाकू न जाने कितनी जगह डाके डाल चुके होते हैं, कितनों की हत्या की होगी इन लोगों ने। इन्हें इनके घर में, जंगल और गुफाओं

में पकड़ना आसान नहीं होता। अपने निवास स्थान पर इनके पास गोली-बन्दूक सभी कुछ होता है। इनका निशाना भी फौज या पुलिस के सिपाही से कम नहीं होता। व्यर्थ में सिपाही बलि बनता है। फिर उनके मकानों और गुफाओं में कई गुप्त मार्ग होते हैं। यदि पुलिस अड्डे तक पहुँच भी गई तो ये लोग गुप्त रास्ते से फरार हो जाते हैं। सारी तैयारी पर पानी फिर जाता है। इसीलिए ऐसे तरीके निकाले जाते हैं कि ये लोग असहाय अवस्था में पकड़ लिये जाएँ। पकड़ने के बाद ही उन्हें पता चले। इस बात को आप मेरे एक अनुभव से समझ सकेंगे।

लगभग दस वर्ष पहले पत्रों में एक खबर छपी थी—"माधवराव का अद्भुत कारनामा; सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी रमाकान्त मजूमदार अपने साथियों सहित गिरफ़्तार—बम बनाने का कारखाना बरामद।"

"सब लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह बम का कारखाना कैसे हाथ में आया होगा? कारखाने के चारों तरफ़ लगभग एक मील तक सुरंगें बिछी थीं; उन्हें किसी भी समय बिजली के तार से उड़ाया जा सकता था। फिर वहाँ पुलिस कैसे पहुँची? यह बात अब तक ऐसी पहेली है जिसे बूझा नहीं गया। हाँ, मजूमदार इसी तरह की हुल्लड़बाजी में गिरफ्तार हुआ था।"

"उसे पकड़ने का काम मुझे मिला था।" मथुरादास ने कहानी को जारी रखते हुए कहा—"एक दिन गुप्तचर ने खबर ला कर दी कि मजूमदार अपने पुराने सहपाठी के घर भोजन करने जा रहा है। मजूमदार जैसे लोग शहर में जब घूमते हैं तो इतने निधड़क हो जाते हैं, कि किसी को सन्देह न हो। मजूमदार साइकिल पर जाने वाला था। उसकी साइकिल जब एलफिन्स्टन रोड पर पहुँची तो सामने से दूसरा साइकिल सवार आया और दोनों साइकिलों में टक्कर हो गई। मजूमदार एक तरफ गिरे और साइकिल दूसरी तरफ। दूसरे साइकिल सवार ने उठ कर मजूमदार का हाथ पकड़ लिया। बोला—"एक तो साइकिल पर दीपक नहीं और उस पर अन्धे की तरह चला रहे हो।"

"कौन कहता है चिराग नहीं है?" मजूमदार गरजा। इसी बीच एक दूसरे राहगीर ने मजूमदार की साइकिल का दीपक बुझा दिया था। इतने में

पुलिस के दो सिपाही और उन्होंने एक एक को पकड़ लिया। सड़क पर बहुत से लोग जमा हो गये। मुझे यह बताने की जरूरत नहीं कि जो लोग जमा हुए उनमें आधे से अधिक सफ़ेद कपड़ों में पुलिस के सिपाही थे। मजूमदार पर बिना दीपक के साइकिल चलाने और फिर दूसरे यात्री को टक्कर देने का इल्जाम लगाया गया। उसने बहुत कुछ कहा मेरी साइकिल का दीपक जल रहा था। संभव है गिरने से बुझ गया हो। किन्तु जवान ने एक बात भी नहीं सुनी। उसने साफ़ कह दिया कि थाने पर चल कर ही निर्णय होगा।

"चलिये, थाने में इन्स्पेक्टर स्वयं देख लेंगे कि मेरी कन्दील का ढक्कन अब तक गर्म है।" मजूमदार ने कहा।

× × × ×

थाने में पहुँचते ही मजूमदार को कस कर बाँधा गया। जब मैं उसके सामने गया तो वह बोला—

"समझ गया, सब कुछ समझ गया। लेकिन मुझे दुःख इस बात का है कि मेरी सात गोलियों वाली पिस्तौल मेरी जेब में ज्यों की त्यों भरी पड़ी रह गई। अगर मुझे जरा भी सन्देह होता कि यह जाल रचा गया है तो मैं दोनों सिपाहियों को ढेर करके पार हो जाता।"

× × × ×

इसी से मिलती-जुलती घटना एक और है। यह घटना रियासत हरिपुरा की है। हरिपुरा के राजमहल में चोरी हुई, चोरी में जेवरों के साथ साथ वह तावीज भी चला गया जिसके बारे में यह प्रसिद्ध था कि जब तक यह ताबीज राजवंश के पास रहेगी राजवंश उन्नति ही करता जाएगा। यद्यपि अब तक चोरों का पता नहीं चला था लेकिन वहाँ की पुलिस ने धारणा बना ली थी कि हो न हो चोरी रियासत के कुख्यात डाकू हबीबखाँ ने की है। और हबीब को पकड़ना आसान काम नहीं था। यह बात प्रसिद्ध थी कि वह अपनी कमर में हमेशा जहर में बुझी कटार रखता है जिससे या तो पकड़ने वाले को मार डाले या असफल होने पर आत्महत्या कर ले। तीन इन्स्पेक्टर उसकी भेंट चढ़ चुके थे। अगर वह हाथ आ जाता तो शायद आत्महत्या कर लेता और फिर

तावीज का पता न लगता। शर्त्त यह थी कि उस डाकू को जीवित पकड़ा जाए। मेरी प्रसिद्धि काफ़ी फैल चुकी थी अतः भारत सरकार ने हबीब को पकड़ने का काम मुझे सौंपा।

मुझे इस मामले में भी किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि हबीब को घुड़-दौड़ देखने का बड़ा शौक है। मैं जानता था कि पैसा होने पर भी हबीब बहुत ऊँचे दर्जे की टिकट ले कर घुड़-दौड़ नहीं देखता होगा। वह रेसकोर्स के आस पास घूमने वाले दर्शकों में ही मिल सकता है। लेकिन उस जन-समुदाय में उसका खोज लेना उतना ही कठिन है जितना सहारा के मैदान में रेत का कोई खास कण ढूँढना। छः मास तक मैं बम्बई, बँगलूर, मद्रास आदि नगरों के रेस-कोर्सों पर घूमता रहा। मेरे साथ हमेशा तीन-चार सिपाही रहते थे। आशा की किरण कहीं दिखाई नहीं देती थी। कुछ शहरों में दो-दो बार जाना पड़ा। आखिर एक दिन किस्मत जागी। मैंने उसे पूना के रेसकोर्स पर खड़ा पाया। उसने नकली दाढ़ी लगा रखी थी लेकिन मैंने उसे पहचान लिया और वह भी उस छोटे-से तिल के कारण जो बाईं आँख के नीचे नाक के पास था। मामूली कपड़ों में मेरे पास पुलिस के सिपाही थे। मैंने उन्हें चारों तरफ तैनात कर दिया और मैं हबीब के पास जा कर खड़ा हो गया। इतने में दौड़ने वाले घोड़े सर्राटे से गुजरे और उपस्थित जनता सागर की तरह हिलोरें लेने लगी। हबीबखाँ के शरीर का बोझ मुझ पर दो बार पड़ा। इस मौके को उचित समझ कर मैं जोर से चिल्लाया—"चोर, चोर।" इसके बाद मैंने हबीबखाँ की तरफ़ इशारा करके कहा—"इसने मेरी जेब से दस रुपये का नोट निकाला है। यह चोर है, पाकिटमार है।"

मेरी आवाज सुन कर दो सिपाही आ गये। उन्होंने हबीबखाँ को सम्बोधित करके कहा—"जनाब देखने में शरीफ नज़र आते हैं और करनी ऐसी।"

इसी समय एक आदमी आगे आया और उसने हबीबखाँ की हिमायत करते हुए कहा—"तुम बिल्कुल झूठ बोलते हो। इन्होंने रुपये नहीं चुराये। मैं पास ही खड़ा हूँ।"

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि हबीबखाँ का हाथ कटार पर न जाए। एक हिमायत के मिलने से हबीब की हिम्मत बढ़ी।

"देखिये साहब, अगर आप चाहते हैं तो आप मेरी तलाशी ले सकते हैं। मेरी जेब में दस रुपये का नोट नहीं है।" हबीब ने सिपाही से कहा।

"माफ़ कीजिये खान साहब। मुझे तलाशी लेने का अधिकार नहीं है।"—पुलिस के सिपाही ने कहा। आप दोनों थाने पर चले चलिये। अगर आपने नोट नहीं लिया है तो इन्हें झूठ बोलने का मजा चखाया जाएगा।"

"चलिये"—हबीबखाँ ने आत्मविश्वास से कहा।

थाने पर पहुँचते ही हबीब की तलाशी ली गई। कोट के अन्दर की जेब से सौ-सौ के तीन नोट मिले। दस का एक नोट भी नहीं निकला। कुरते की जेब देखी गई। कुरते के नीचे कमरबन्द में एक कटार नजर आई। मैंने तुरन्त कहा—

"इसने कटारी की म्यान में मेरा नोट छिपाया होगा।"

हबीब ने कटारी निकाल कर म्यान सहित इन्स्पेक्टर के हाथ में दी और बोला—"आप ही इस कटारी को निकाल कर देख लीजिये।"

मैंने तत्काल उस कटार को छीन कर हुक्म दिया—"बाँधो इसकी मुश्कें। यह हबीबखाँ डाकू है।"

हबीबखाँ को हथकड़ियाँ पड़ चुकी थीं। उसने हताश दृष्टि से मेरी ओर ताक कर कहा—

"तो आप ही माधवराव हैं जिनकी नियुक्ति मुझे गिरफ्तार करने के लिए हुई थी। बधाई है नौजवान छोकरे।"

× × + ×

रात काफ़ी हो चुकी थी अतः माधवराव, मधुसूदन और रामैया एक दूसरे को नमस्कार करके चले गये।

दूसरे दिन समाचार-पत्रों में लोगों ने पढ़ा कि इन्स्पेक्टर दीनानाथ ने बड़ी खूबी से जेल से भागे हुए एक कैदी को गिरफ्तार कर लिया।

सभापति का चुनाव

सभा-स्थल पर हजारों की संख्या में जनता एकत्रित हो चुकी थी। सभी लोग प्रतीक्षा कर रहे थे कि सभा की कार्यवाही कब शुरू होती है। सभा के शुरू होने में ज्यों ज्यों देर हो रही थी, श्रोताओं की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। इतने में सभा के मंत्री श्री बसन्तराव श्रीमान् आशुवक्ता के पास पहुँचे और बोले—

"ये बड़े लोग अपना बड़प्पन बस इसी में समझते हैं कि सभा में देर से पहुँचा जाए। साढ़े पाँच का समय था अब साढ़े छः बज कर सात मिनट हुए, लेकिन सभापति जी का कहीं पता नहीं।"

"आज किसे अध्यक्ष बनाया गया है?" आशुवक्ता ने पूछा।

"अजी वही दीवान बहादुर मनोहरसिंह एम्. एल्. ए.। दीवान बहादुर और एम्. एल्. ए. होने के कारण मनोहरसिंह जी को अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन देखिये, एक घण्टा हो गया, उनके आने का ठिकाना नहीं। अब हमें किसी दूसरे व्यक्ति को अध्यक्ष बना कर काम शुरू करना चाहिए।"

"किसे अध्यक्ष बनाया जाएगा ?"

"आप जरा लच्छेदार भाषा में सभापति के लिए नाम उपस्थित कीजिये, मैं भी दो शब्दों में अनुमोदन कर दूँगा और सभा का काम शुरू हो जाएगा।"

"किन्तु सभापति का नाम तो बताइए जिससे मैं प्रस्ताव रख सकूँ" आशुवक्ता ने पूछा।

वसन्तराव ने कुछ सोचने के बाद कहा—"किसका नाम बताऊँ जनाब ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यहाँ तो सब एक से बढ़ कर एक बैठे हैं। अच्छा आप बोलना तो शुरू कीजिये, इसी बीच में किसी से पूछ कर नाम बता दूँगा।"

इतना कह कर वसन्तराव लाउड स्पीकर के पास गये और बोले—"सज्जनो, बहुत देर हो गई है। हम लोगों को दुःख है कि सभा का काम समय पर शुरू नहीं हो सका। इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। सबसे पहले आशुवक्ता जी आपके सम्मुख सभापति का नाम रखेंगे।"

वसन्तराव अपने स्थान पर बैठे कि आशुवक्ता ने घबरा कर उनसे पूछा कि भले आदमी नाम तो बताओ। वसन्तराव कुछ बोले की लोगों ने जोर जोर से तालियाँ बजाईं। प्रस्तावक का स्वागत हो चुका था अतः उसे विवश हो कर लाउडस्पीकर के पास जाना पड़ा।

"सज्जनो, देवियो, भाइयो, बहनों, माताओ और साथियो!" आशुवक्ता ने भाषण शुरू किया—"मुझे जिस प्रस्ताव को उपस्थित करने का काम सौंपा गया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रस्ताव का महत्व इसलिए नहीं है कि वह सब से पहला प्रस्ताव है, लेकिन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके बिना सभा का काम नहीं चल सकता।"

आशुवक्ता ने भूमिका बाँधी। उनका विचार था भूमिका समाप्त होते होते मंत्री जी सभापति का नाम सुझा देंगे। इधर मंत्री जी ने दो-तीन आदमियों से अध्यक्ष बनने की प्रार्थना की लेकिन किसी ने भी न तो स्वीकार किया और न अस्वीकार ही। बेचारे आशुवक्ता ने अपना भाषण फिर शुरू किया।

"आज के मनोनीत सभापति जी को कौन नहीं जानता ? आपका नाम

केवल हैदराबाद में ही नहीं, केवल भारत में ही नहीं, अखिल विश्व में बच्चे-बच्चे के मुँह पर है। आपके सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, समुद्र को तृप्त करने के लिए चुल्लू भर पानी डालना है, एक वट-पत्र पर इमली का पत्ता चढ़ाना है अथवा घनघोर जंगल में तुलसी का पौदा लगाना है।"

आशुवक्ता ने मंत्री जी पर नज़र डाली। वे इस समय चौथे व्यक्ति से पूछ रहे थे अतः उन्हें अपना भाषण जारी रखना पड़ा —

"सभापति जी की ख्याति देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में फैली हुई है। सारे भू-मण्डल में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जिनको आप अपने धन से, विचारों से, व्याख्यानों से और परामर्श से सहायता पहुँचाते हैं। आपकी जन-सेवाओं का उल्लेख करने के लिए कल्पवृक्ष की कलम बनाई जाए, सात समुद्रों को दवात बनाया जाए, सारी पृथ्वी को कागज बना कर महा भारत के लिपिक गणेशजी को लिखने के लिए नियुक्त किया जाए तब भी कल्प-कल्पान्तर में उसका उल्लेख नहीं हो सकता।"

मंत्री जी इस समय पाँचवें व्यक्ति से अध्यक्ष बनने के लिए पूछ रहे थे। अब तक किसी ने स्वीकृति नहीं दी थी।

आशुवक्ता कहते गये—"आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। छोटे-बड़े सभी के साथ आप सहृदयता से मिलते हैं। जब हम लोगों ने आप से आज के सभापति बनने की प्रार्थना की तो आप तत्काल तैयार हो गये। आपका एक-एक मिनट बहुमूल्य है, फिर भी आप सार्वजनिक कामों में कभी पीछे नहीं रहते।"

मंत्री जी अब भी अपने काम में सफल नहीं हुए थे, अतः व्याख्यान जारी रहा —

"मैं एक बात भूल जा रहा था। दुनिया में बहुत से लोग हैं जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती में से किसी एक की कृपा होती है। बहुत कम ऐसे लोग हैं जिन पर दोनों की एक साथ कृपा हो। आप भी उन्हीं लोगों में से एक हैं। आप पर कृपा करने के लिए लक्ष्मी और सरस्वती में स्पर्द्धा रहती है। इतने

महान् व्यक्ति को आज सभापति पद के लिए प्राप्त करना सचमुच हमारे लिए सौभाग्य की बात है ।"

आशुवक्ता ने मंत्री जी पर नजर दौड़ाई । वे इस समय नवें या शायद दसवें व्यक्ति से पूछ रहे थे । मंत्री जी के चेहरे से यह ज्ञात नहीं हुआ कि उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली है । इसीलिए आशुवक्ता ने अपना सिलसिला जारी रखा—

"लक्ष्मी और सरस्वती के वरद पुत्र होने पर भी आपको अभिमान ने स्पर्श तक नहीं किया । आप लोग जानते हैं, आदमी थोड़ा-सा भी रुपया पा कर कितना घमण्ड करने लगता है । थोड़े-से पैसों को पा कर आदमी फूल कर कुप्पा हो जाता है । इसी तरह सरस्वती की थोड़ी-सी कृपा होने पर आदमी मच्छर की तरह भिनभिनाने लगता है । हमारे मनोनीत प्रधान जी पर दोनों देवियों की कृपा है किन्तु आप में अहंकार का नाम नहीं ।"

मंत्री जी इस समय भी सभापति बनने के लिए किसी से पूछ रहे थे और इधर आशुवक्ता का शब्द कोष भी खाली हो चुका था । अन्त में उन्होंने अपने भाषण का उपसंहार इस तरह किया—

"इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं सभापति जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपना आसन ग्रहण करें ।"

आशुवक्ता ने किसी का नाम नहीं लिया था अतः मंत्रीजी ने जिस जिस से पूछा सभी ने समझा उन्हें ही सभापतित्व करना है । लगभग एक दर्जन व्यक्ति एक साथ सभापति की कुर्सी की तरफ लपके । बेचारी कुर्सी की मुश्किल थी, सभी लोगों में उसके लिए छीना-झपटी हो रही थी, उधर जनता ने तालियाँ बजा बजा कर कहकहे लगाने शुरू किये ।

और इस तरह केवल सभापति के प्रस्ताव के साथ वह सभा समाप्त हो गई ।

G-2173
25-5-98

केवल हैदराबाद में ही नहीं, केवल भारत में ही नहीं, अखिल विश्व में बच्चे-बच्चे के मुँह पर है । आपके सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, समुद्र को तृप्त करने के लिए चुल्लू भर पानी डालना है, एक वट-पत्र पर इमली का पत्ता चढ़ाना है अथवा घनघोर जंगल में तुलसी का पौदा लगाना है ।"

आशुवक्ता ने मंत्री जी पर नजर डाली । वे इस समय चौथे व्यक्ति से पूछ रहे थे अतः उन्हें अपना भाषण जारी रखना पड़ा —

"सभापति जी की ख्याति देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में फैली हुई है । सारे भू-मण्डल में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जिनको आप अपने धन से, विचारों से, व्याख्यानों से और परामर्श से सहायता पहुँचाते हैं । आपकी जन-सेवाओं का उल्लेख करने के लिए कल्पवृक्ष की कलम बनाई जाए, सात समुद्रों को दवात बनाया जाए, सारी पृथ्वी को कागज बना कर महा भारत के लिपिक गणेशजी को लिखने के लिए नियुक्त किया जाए तब भी कल्प-कल्पान्तर में उसका उल्लेख नहीं हो सकता ।"

मंत्री जी इस समय पाँचवें व्यक्ति से अध्यक्ष बनने के लिए पूछ रहे थे । अब तक किसी ने स्वीकृति नहीं दी थी ।

आशुवक्ता कहते गये—"आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है । छोटे-बड़े सभी के साथ आप सहृदयता से मिलते हैं । जब हम लोगों ने आप से आज के सभापति बनने की प्रार्थना की तो आप तत्काल तैयार हो गये । आपका एक-एक मिनट बहुमूल्य है, फिर भी आप सार्वजनिक कामों में कभी पीछे नहीं रहते ।"

मंत्री जी अब भी अपने काम में सफल नहीं हुए थे, अतः व्याख्यान जारी रहा —

"मैं एक बात भूल जा रहा था । दुनिया में बहुत से लोग हैं जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती में से किसी एक की कृपा होती है । बहुत कम ऐसे लोग हैं जिन पर दोनों की एक साथ कृपा हो । आप भी उन्हीं लोगों में से एक हैं । आप पर कृपा करने के लिए लक्ष्मी और सरस्वती में स्पर्द्धा रहती है । इतने

महान् व्यक्ति को आज सभापति पद के लिए प्राप्त करना सचमुच हमारे लिए सौभाग्य की बात है।"

आशुवक्ता ने मंत्री जी पर नज़र दौड़ाई। वे इस समय नवें या शायद दसवें व्यक्ति से पूछ रहे थे। मंत्री जी के चेहरे से यह ज्ञात नहीं हुआ कि उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली है। इसीलिए आशुवक्ता ने अपना सिलसिला जारी रखा—

"लक्ष्मी और सरस्वती के वरद पुत्र होने पर भी आपको अभिमान ने स्पर्श तक नहीं किया। आप लोग जानते हैं, आदमी थोड़ा-सा भी रुपया पा कर कितना घमण्ड करने लगता है। थोड़े-से पैसों को पा कर आदमी फूल कर कुप्पा हो जाता है। इसी तरह सरस्वती की थोड़ी-सी कृपा होने पर आदमी मच्छर की तरह भिनभिनाने लगता है। हमारे मनोनीत प्रधान जी पर दोनों देवियों की कृपा है किन्तु आप में अहंकार का नाम नहीं।"

मंत्री जी इस समय भी सभापति बनने के लिए किसी से पूछ रहे थे और इधर आशुवक्ता का शब्द कोष भी खाली हो चुका था। अन्त में उन्होंने अपने भाषण का उपसंहार इस तरह किया—

"इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं सभापति जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपना आसन ग्रहण करें।"

आशुवक्ता ने किसी का नाम नहीं लिया था अतः मंत्रीजी ने जिस जिस से पूछा सभी ने समझा उन्हें ही सभापतित्व करना है। लगभग एक दर्जन व्यक्ति एक साथ सभापति की कुर्सी की तरफ लपके। बेचारी कुर्सी की मुश्किल थी, सभी लोगों में उसके लिए छीना-झपटी हो रही थी, उधर जनता ने तालियाँ बजा बजा कर कह-कहे लगाने शुरू किये।

और इस तरह केवल सभापति के प्रस्ताव के साथ वह सभा समाप्त हो गई।

G-2173
25-5-98

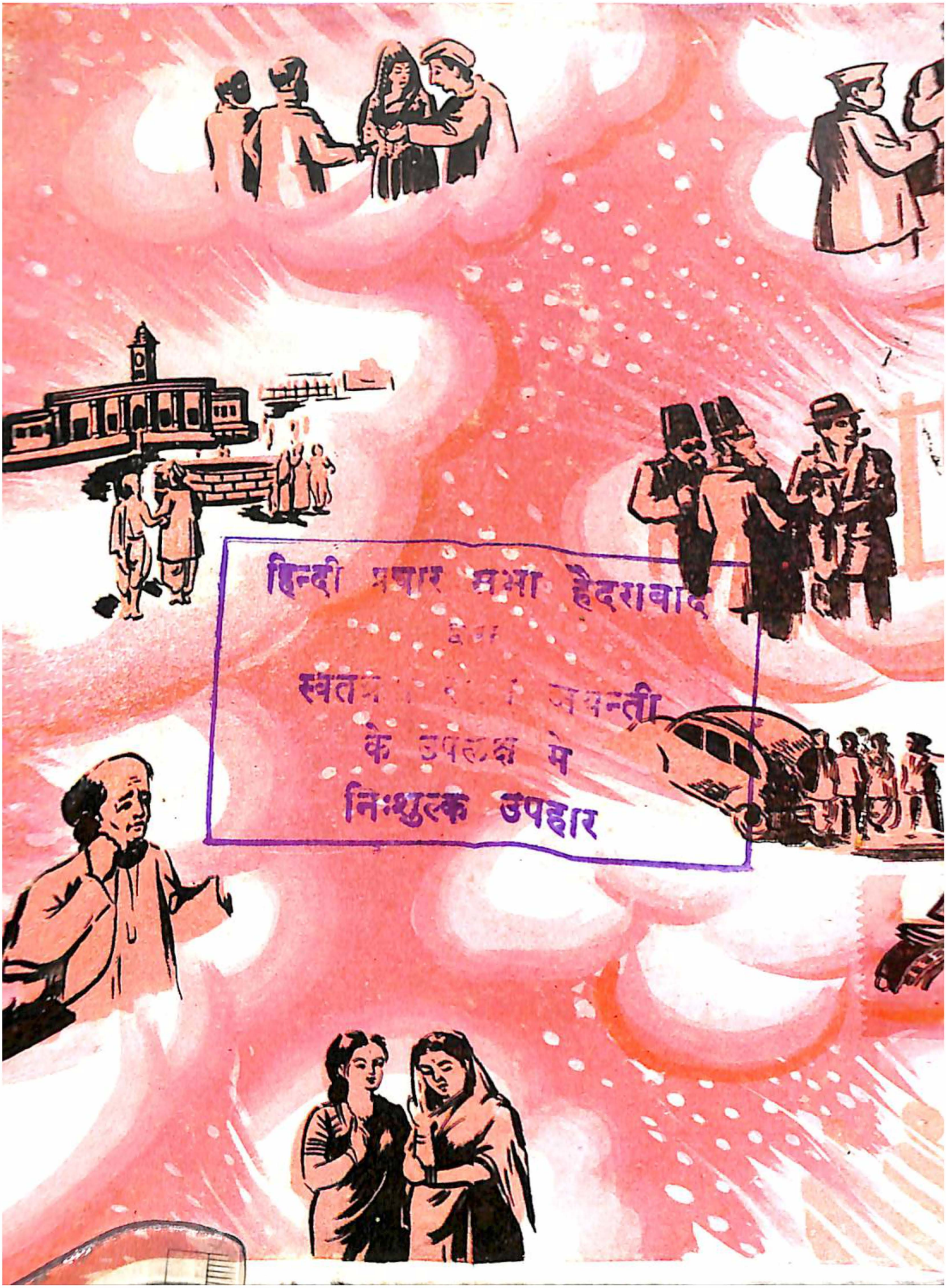

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद
स्वत [illegible] जयन्ती
के उपलक्ष मे
निःशुल्क उपहार